सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन रायाँइ-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 48, अंक

मई - 2015

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।।

– चाणक्य सूत्र

वह महान् है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यम्भावी है।

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

– अष्टावक्र गीता

सत्य बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे-तैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्य बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।

– कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 48 मई 2015 अंक : 2

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु –
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदु:खेन बाह्यः।

कठोपनिषद् 2/2/11

अर्थात्

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सूर्य देवता लोगों की आँखों से होने वाले बाहर के दोषों से लिप्त नहीं होता; उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा लोगों के दु:खों से लिप्त नहीं होता क्योंकि सबमें रहता हुआ भी वह सबसे अलग है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह	9
4.	ज्योति–पुज से ज्योति कलश छलके – श्रीमती शारदा सिसौदिया	13
5.	जाबाल दर्शन के अनुसार तप एवं जप का वर्णन	16
6.	तर्कों की भाषा से परे है, ईश्वर की सत्ता – पं. श्रीराम शर्मा	17
7.	योगेश्वर गम्भीरनाथ जी महाराज का जीवन वृत्त	20
8.	अष्टांग योग साधना – प्रो. ऋषिराम शर्मा	25
9.	देह और दही ? – परमहंस स्वामी योगानन्द	28
10.	श्री रघुराज के भांजे को प्राणदान – केशवदेव उपाध्याय	30
11.	दृश्य की असत्ता और सबकी ब्रह्मरुपताका	34
12.	लिपट जाऊँ रज बन के – श्री जगदीश राए बंसल	37
13.	योग–आसन	38
14.	कर रहे शक्ति का संचार– विजय कुमार शर्मा	39
15.	सूचना	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

• विशेष लेख

विवेकज ज्ञान की पराकाष्ठा

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने 'सिद्धयोग' के ग्यारहवें वर्ष के प्रथम अंक में योगी को विवेकज ज्ञान नामक लेख में हमने भली प्रकार यह समझाने की चेष्टा की है कि विवेकज ज्ञान की उत्पत्ति किस प्रकार से हुआ करती है। साथ ही लेख में यह समझाया गया है कि क्षण और उसके क्रम में संयम करने से योगी को विवेकज ज्ञान उपलब्ध हो जाता है।

किन्तु इसके अतिरिक्त विवेक ज्ञान में कई एक और भी व्यवधान हैं जो विवेकज ज्ञान में एक प्रकार के अन्तराय ही है यह विवेकज ज्ञान को पराकाष्ठा पर नहीं पहुँचने देते। उन सबकी निराकृति के लिए अन्तर्दृष्टा योगी जान लेता है कि यथावत् वस्तु क्या है? जाति, लक्षण, देश आदि की एकता में किस प्रकार योगी अपने संयम के बल से यथार्थता को जान पाता है। इन सब बातों का उल्लेख भगवान पतंजलि जी ने निम्नांकित सूत्र में किया है –

जाति लक्षण देशैरन्यताऽनवच्छेदा तुल्ययोस्तुत: प्रतिपत्ति:।

– विभूति पाद 53

व्यासभाष्य –

तुल्ययोर्देश लक्षणसारूप्ये जातिभेदोऽन्यताया हेतु: गौरियं वडवेयमिति, तुल्यदेशजातीयत्वे लक्षणमन्यत्वकरं, कालाक्षी गौ: स्वस्तिमती गौरिति, द्वयोरामलकयोर्जातिक्षण सारूप्याद् देशभेदोऽन्यत्वकर इदम्पूर्वमिदमुत्तरमिति, यदा तु पूर्वमामलकमन्यव्यग्रस्यज्ञातुरुत्तरदेश उपावर्त्यते तदा तुल्यदेशत्वे पूर्वमेतदुत्तरमेतदिति अविभागानुपपत्ति:, असादग्धेन च तत्वज्ञानेन भवितव्यमित्यत इदमुक्तंतत: प्रतिपत्ति: विवेकज ज्ञानात् इति कथम्–पूर्वामलक सहक्षणो देश उत्तरामलकसहक्षण देशाद्भिन्न:, ते चामलके स्वदेशक्षणानुभवभिन्ने, अन्यदेशक्षणानुभवस्तु तयोरन्यत्वे हेतुरिति, एतेन दृष्टान्ते न परमाणोस्तुल्य जातिलक्षणदेशस्य पूर्वपरमाणुदेशसहक्षण साक्षात्करणादुत्तरस्य परमाणोस्तद्देशानुपपत्तौउत्तरस्य तद्देशानुभवोभिन्न:, सहक्षण भेदात्तयोगीश्वरस्य योगिनोऽन्यत्वप्रत्ययोभवतीति, अपरे तु वर्णयन्ति–येऽन्त्या विशेषास्तेऽन्यताप्रत्ययं कुर्वन्तीति, तत्रापि देशलक्षणभेदो मूर्तिव्यवधि जाति भेदश्चान्यत्वेहेतु: भेदस्तु योगिबुद्धिगम्य एवेति, अत उक्तं मूर्तिव्यवधि जाति, भेदाभावान्नास्ति मूलपृथक्त्वम्, इति वार्षगण्य:।

अर्थात् जहाँ पर देश, जाति और लक्षण समान होते हैं वहाँ पर जाति भेद अन्यता अर्थात् भिन्नता को जानने का कारण होता है। जैसे–यह गौ है और यह घोड़ी है, गौ और घोड़ी

ऐसा होने पर भी जहां पर देश और जाति समान हों वहां पर लक्षणों से भेद को जाना जाता है। जैसे–वह गौ जिसके गले में कुछ चर्म भाग लटक गया है, चर्म भाग का इस प्रकार लटक जाना अन्य गौओं की उसकी भिन्नता का कारण है। इसी प्रकार से देश भेद भी भिन्नता को बतलाने का कारण हुआ करता है। जैसे एक स्थान पर दो आँवले रखे हों उनका रंग–रूप सब समान है किन्तु लाने वाला यह जानता है कि मै इस आँवले को पूर्व देश से लाया हूँ और दूसरे आँवले को उत्तर देश से लाया हूँ। पूर्व और उत्तर का देश दोनों आँवलों की भिन्नता को बतलाने वाला है। किन्तु लाने वाला व्यक्ति भूल जाय और कोई पूर्व वाले आँवले को उत्तर वाले आवले की जगह और उत्तर वाले आँवले को पूर्व वाले आँवले की जगह बदल दे तो उस समय सर्व साधारण इस बात को नहीं जान सकते कि कौन सा आँवला पूर्व देश का है और कौन सा आँवला उत्तर देश का है? ऐसी अवस्था में योगी का विवेकज ज्ञान ही उनकी यथार्थता को जानने का कारण बनेगा, क्योंकि उनकी उत्पत्ति काल के क्षण और क्रम जो हैं वह भिन्न–भिन्न हैं। उनके क्षणों और क्रमों के अन्दर संयम करने से योगी यह भली प्रकार जान जायेगा कि यह पूर्व दिशा का आंवला है और यह उत्तर दिशा का आंवला है, क्योंकि वह दोनों आँवले क्षण–क्रम और परमाणुओं के भेद से भिन्न–भिन्न तो है हीं। इस तत्व को योगी की सूक्ष्म बुद्धि ही निर्णय कर सकती है। क्योंकि योगी के लिए भगवन पतंजलिदेव यह पहले ही कह चुके है कि 'परमाणु परम महत्वान्तस्य वशीकारः।' अर्थात् योगी का संयम बल इतना बढ़ जाता है कि वह परमाणु से लेकर के मूल प्रकृति पर्यन्त इसका अधिकार हो जाया करता है। इसी प्रकार विवेकज ज्ञान इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है कि योगी को संयम करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, प्रत्युत उसका मन संकल्प मात्र से अपने आप संयमित होने लगता है एवं विवेकज ज्ञान की उत्पत्ति हो जाया करती है। इसी ज्ञान को फिर तारक ज्ञान कहने लग जाया करते हैं। भगवान पतंजलिदेव ने अपने योग दर्शन में निम्नांकित सूत्र में स्पष्ट समझाया है –

तारकं सर्व विषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकज ज्ञानम्।

(विभूतिपाद 54)

पढ़िये इस सूत्र पर व्यास–भाष्य–

तारकमिति–स्वप्रतिभोत्थमनौपदेशिक मित्यर्थः, सर्वविषयं = नास्य किंचिदविषयी भूतमित्यर्थः, सर्वथा विषयं = अतीतानागत प्रत्युपन्नं सर्व सर्वथा जानातीत्यर्थः, अक्रममिति = एकक्षणोपारूढं सर्व सर्वथा गृह्णातीत्यर्थः एतद्विवेकजं ज्ञानं परिपूर्णम्, अस्यैवांशो योगप्रदीप मधुमती भूमिमुपादाय यावदस्य परिसमाप्तिरिति।

अर्थात् तारक ज्ञान उसको कहते हैं जिसमें योगी को किसी भी विषय को संयम का लक्ष्य नहीं बनाना पड़ता, उसका ज्ञान संयमित सा ही रहता है, वह ज्ञान इस प्रकार का हुआ करता है जिससे भूत–भविष्य का कोई भी लक्ष्य उसका अविषय नहीं रहता। एक प्रकार से पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ विवेकज ज्ञान ही तारक ज्ञान में बदल जाया करता है। तारक ज्ञान के

उदय हो जाने पर योगी सभी कुछ जानने वाला बन जाया करता है। यह स्थिति इस प्रकार की होती है कि योगी के सामने किसी ने कोई विषय उपस्थित किया और सुनते ही उसने जान लिया। ऐसी स्थिति उपलब्ध होने पर योगी का लौकिकीय भाषा में अन्तर्यामी, जानीजान, घट–घटवासी आदि शब्दों का प्रयोग उसके लिए करने लग जाय करते हैं। यह स्थिति उपलब्ध हो जाने के बाद योगी का सत्व उत्तरोत्तर निर्मल हो जाया करता है और पुरुष अपने आपको केवल भाव में देखने लगता है।

सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्य कैवल्यमिति (विभूतिपाद 55)

व्यास–भाष्य–

यदा निर्द्धूतरजस्तमोमल बुद्धि सत्वं पुरुषस्यान्यताप्रत्यय मात्राधिकारं दग्धक्लेशबीजं भवति तदा पुरुषस्य शुद्धिसाम्यरूप्यामिवापन्न भवति, तदा पुरुष स्योपचरित भोगाभावः शुद्धिः, एतस्याम वस्थायां कैवल्यं भवतीश्वरस्यानीश्वरस्य वा, विवेकज ज्ञान भागिन इतरस्य वा, न हि दग्धक्लेश बीजस्य ज्ञाने पुनरपेक्षा काचिदस्ति, सत्वशुद्धि द्वारेणैतत्समाधिजमैश्वर्य्यं च ज्ञानञ्चोपक्रान्तम्, परमार्थतस्तु ज्ञानाददर्शनं निवर्तते, तस्मिन्निवृते न सन्त्युत्तरे क्लेशाः। क्लेशाभावात्कर्मविपाकाभावः, चरिताधिकाराश्चैतस्याम वस्थायां गुणा न पुरुषस्य पुनर्दृश्यत्वेनोपतिष्ठन्ते, तत्पुरुषस्य कैवल्यम्, तदापुरुषः स्वरूपमात्रज्योतिरमलः केवली भवति।

जब योगी के रज और तम के मल शान्त हो करके बुद्धि सत्व बिल्कुल निर्मल हो जाता है। क्लेश बीज दग्ध हो जाते हैं। दग्धबीजक्लेश होने पर गुणाधिकार समाप्त हो जाता है। तभी प्रकृति और पुरुष का शुद्धिसाम्य उपस्थित होता है। क्लेशबीज के दग्ध हो जाने पर कर्म–विपाक का अभाव हो जाता है, जन्म और मरण का चक्कर छूट जाता है। पुरुष अपने आप को बिल्कुल शुद्ध स्वरुप में देखने लगता है। गुणों का गुणों में अवस्थान हो जाता है। इसी का नाम केवली भाव है। विवेकज ज्ञान की पराकाष्ठा हो जाने पर तारक ज्ञान का उदय और प्रकृति पुरुष का शुद्धि साम्य रूपी निर्मल फल मिलते हैं जिससे योगी अपने आपको कृतार्थ बना लेता है।

जिसने एक बार असल मिश्रि का स्वाद चखा है, उसे क्या सस्ते गुड़ का स्वाद भाएगा? जो एक बार ऊँची अटारी में सो चुका है, क्या उसे फिर गन्दी झोपड़ी में सोना अच्छा लगेगा? इसी तरह जिसने एक बार ब्रह्मानन्द का स्वाद चखा है, वह क्या कभी तुच्छ विषयानन्द में रममाण हो सकेगा?

– श्री रामकृष्ण परमहंस

सम्पादकीय

श्री महाल्मीकीय रामायण एवं योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(पिछले अंक (जनवरी) में मैंने श्री महालमीकीय रामायण के आधार पर भगवान श्री राम के चरित्र को दर्शाने का प्रयास किया था। भगवान श्री राम को चौदह वर्ष का वनवास हो गया। वे सहर्ष वन को जाने के लिये तैयार हैं। जाने से पहले वे अपनी माता कौशल्या से आज्ञा लेने के लिये जाते हैं। बहुत ही मुश्किल से माता कौशल्या वन जाने की आज्ञा देती हैं। तत्पश्चात श्री राम सीता जी से उनके महल में जाकर अपने वन गमन का समाचार देते हैं। सीता जी भी उनके साथ ही वन में जाने को तैयार हो जाती हैं। श्री राम उन्हें वन के अनेकानेक कष्टों का वर्णन करते हुये रोकने का प्रयत्न करते हैं। सीता जी अपने पातिव्रत धर्म का उल्लेख करती हुई साथ चलने के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करती हैं। यदि उन्हें अयोध्या में रहना पड़े तो वे अपने प्राण त्यागने की बात कहती हैं। पति ही पत्नी के लिये देवता स्वरूप होता है इस बात को प्रमाणित करती हुई अपने साथ जाने के हठ को नहीं छोड़ती हैं। वन में जाने से रोकने पर नयनों से अश्रुधारा बहाती हुई जोर – जोर से रोती हुई श्री राम जी को साथ ले जाने के लिये मनाती हैं। पढ़िये, निम्न पक्तियों को जिनमें सीता के पवित्र भावों को समझा जा सकता है। आज के सभ्य समाज की नारियों को भी सीता को आदर्श मान कर कार्य करने चाहिये। सम्पादक)

सीता जी श्री राम जी से कहती हैं आपने वन वास के जो दोष बताये हैं वे सब आप के रहते हुये मेरे लिये रूप हो जायेंगे। मुझे गुरुजनों की आज्ञापूर्वक अवश्य ही आप के साथ जाना है। अन्यथा मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगी –

त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया।
त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवितम्।।

अर्थात मुझे गुरुजनों की आज्ञापूर्वक अवश्य ही आप के साथ जाना है क्योंकि आप का वियोग हो जाने पर मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगी। हे महाप्राज्ञ ! वन में दुःख और दोष भरे पड़े है फिर भी जैसे मैंने अपने पिता के घर में ब्राह्मणों के मुख से सुनी थी कि मुझे जीवन में अवश्य वन में रहना पड़ेगा। अब यह बात मेरे जीवन में सत्य होकर रहेगी। मेरे हस्तरेखा के विशेषज्ञों से वनवास की बात जानकर मैं सदा ही वनवास के लिये उत्साहित रहती हूँ। ब्राह्मणों के वाक्य अवश्य ही पूरे होंगे यह पलट नहीं सकते यह एक न एक दिन अवश्य पूरे होंगे। अतः मैं स्वामी के साथ अवश्य ही चलूँगी। पढ़िये निम्न श्लोक –

शुद्धात्मन प्रेम भावाद्धि भविष्यामि विकल्मषाः
भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि पर दैवतम् ।।

हे शुद्धात्मन ! आप मेरे स्वामी हैं। आप के पीछे–पीछे प्रेम भाव से वन में जाने पर मेरे पाप दूर हो जायेंगे क्योंकि स्वामी अर्थात् पति ही स्त्री के लिये सबसे बड़ा देवता है। स्वामी ! मैंने वेदज्ञ ब्राह्मणों के मुख से सुना है कि धर्म के अनुसार पिता के द्वारा जल से संकल्प करके जो कन्या दे दी जाती है वह परलोक में भी उसी की स्त्री होती है –

इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल ।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ।।

हे स्वामी ! मैं आप की भक्त हूँ। मुझे दु:ख मिले या सुख, मैं दोनों ही अवस्थाओं में सम रहूँगी। हर्ष या शोक के वशीभूत नहीं होऊँगी। अतः आप मुझे अवश्य ही साथ ले चलने की कृपा करें। यदि आप मुझे अपने साथ नहीं ले जायेंगे तो मैं विष खा लूँगी, आग में कूद पड़ूँगी, या जल में डूब कर मर जाऊँगी। निम्न श्लोक दृष्टव्य है –

यदि मां दुखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ।।

यदि आप मुझे अपने साथ नहीं ले जायेंगे तो मैं विष खा लूँगी, आग में कूद जाऊँगी या जल में डूब जाऊँगी। इतना कहने के बाद भी सीता ने जब देखा कि श्री राम साथ ले जाने को तैय्यार नही हैं तो रोती हुई नेत्रों से गरम – गरम अश्रुधारा छोड़ती हुई पृथ्वी को भिगोने लगी। सीता अत्यधिक अधीर होकर डरती हुई श्री राम पर आक्षेप सा करती हुई कहने लगी–श्री राम ! मेरे पिता मिथिलेश विदेहराज जनक ने आपको जामाता के रूप में पाकर क्या यह भी कभी समझा था कि आप केवल शरीर से ही पुरुष हैं क्रिया कलाप से तो स्त्री के समान हैं। सीता पुनः कहती हैं – आप के यहाँ छोड़ जाने पर संसार के लोग अज्ञानवश यह अवश्य कहेंगे कि सूर्य के समान तपने वाले श्री राम चन्द्र में तेज और पराक्रम का अभाव है। यह असत्य बात मुझे सदाही दु:ख देती रहेगी। आप किस दु:ख में पड़कर अथवा किसी का भय मानकर अपनी पत्नी सीता को जो एक मात्र आपके परायण है, छोड़कर जाना चाहते हैं। जैसी कुलकलंकिनी परपुरुष पर दृष्टि रखती है वैसी मैं बिलकुल नहीं हूँ आप के सिवा मैं पुरुष को मन से भी नहीं देख सकती अतः मैं तो आप के साथ ही चलूँगी मेरा यहाँ रहना सम्भव ही नहीं है। मैं कुमारावस्था से ही अब तक आप के साथ रही हूँ अब आप मुझे दूसरे के हाथ सौंपना चाहते हैं। वह भरत जिसके कारण आपका राज्याभिषेक रुक गया उसके पास मैं कदापि नहीं रह सकती। उसके वश में होकर आप ही रहें मैं नहीं रह सकती। मुझे छोड़कर आप का वन में जाना कदापि उचित नहीं है। मैं तो वन में, स्वर्ग में सभी जगह आपके साथ ही रहना चाहती हूँ। वन में प्रचण्ड आँधी से उड़कर जो धूल मेरे शरीर पर पड़ेगी उसे मैं चन्दन के समान समझूँगी। आप वहाँ जो कुछ भी कन्द मूल मुझे देंगे मैं उसी में सन्तुष्ट रहूँगी माता, पिता व महल के सुख को कभी याद नहीं करूँगी। आप जहाँ भी रहेंगे वही मेरे लिये स्वर्ग है। आप के बिना स्वर्ग भी नरक है। यदि आप मुझे अपने साथ वन में नहीं ले चलेंगे मैं आज ही विष खा लूँगी। आप के शत्रुओं के आधीन मैं कदापि नहीं रह सकती।

चौदह वर्ष के वियोग को कैसे सहन करुँगी ? इस प्रकार से जोर–जोर से विलाप करती हुई सीता श्री राम से लिपट–लिपट कर रोने लगी। उसके दोनों नेत्रों से स्फटिक के समान निर्मल जल बह रहा था, ऐसा लग रहा था मानों दो कमलों से जल धारा बह रही हो। सीता जी दुःख के मारे अधीर होकर अचेत सी हो रही थी। तब श्री रामचन्द्र जी ने दोनों हाथों से संभाल कर हृदय से लगा लिया और सान्त्वना देते हुये कहा – " देवि ! तुम्हें दुःख देकर मुझे स्वर्ग का सुख भी अच्छा नहीं लगता है। मुझे ब्रह्मा की भाँति किसी से भी भय नहीं है। मैं वन में तुम्हारी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हूँ। तुम्हारे हार्दिक भावनाओं को पूर्णतया जाने बिना मैं तुम्हें वनवासिनी नहीं बनाना चाहता था। मिथिलेश कुमारी ! जब तुम मेरे साथ वन में रहने के लिये उत्पन्न हुई हो तो मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता ठीक उसी प्रकार से जैसे आत्म ज्ञानी पुरुष अपने स्वाभाविक प्रसन्नता व आनन्द को नहीं त्याग सकता। पढ़िये आगे के इस श्लोक को –

यत् सृष्टासि मया सार्धम् वनवासाय मैथिलि।
न विहातुं मया शक्या प्रीतिरात्मवता यथा।।

इसलिये सीते ! पूर्वकाल में सत्पुरुषों ने अपनी पत्नी के साथ रहकर जिस धर्म का आचरण किया था उसी का मैं भी तुम्हारे साथ रहकर अनुसरण करुंगा। सीते ! मैं पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। पिता की सेवा का अनुसरण करने से स्वर्ग, धन धान्य, पुत्र और सुख कुछ भी दुर्लभ नहीं है। सीते ! " तुमने जो यह कहा है कि मैं आप के साथ वन में निवास करुँगी " यह शब्द सुनकर मेरा विचार बदल गया है। अब मैं तुम्हें अवश्य ही अपने साथ ले चलूँगा। मैं तुम्हें वन में चलने की आज्ञा देता हूँ। तुम्हारे इस प्रकार के दृढ़ निश्चय को देखकर मुझे स्वर्ग भी अच्छा नहीं लग रहा है। तुम वनवास के योग्य दान आदि शुभ कर्म प्रारम्भ कर दो। ब्राह्मणों को उत्तम – उत्तम वस्तुयें दान कर दो। भोजन माँगने वालों को, भिक्षुओं को भोजन दो। जो भी मनोरंजन की सामग्रियाँ हैं उन्हें अपने सेवकों में बाँट दो। श्री राम से आज्ञा (वन गमन) मिलने पर सीता अति प्रसन्न हुई और दान आदि सभी प्रकार के पुण्य कार्यों में जुट गई और वन गमन की तैय्यारियाँ करने लगी।

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

महाराजपृथु दीर्घ काल तक राज्य करने के पश्चात् परम पुरुषार्थ मोक्ष हेतु वानप्रस्थ होने, तपोबन को चले गये। वहाँ कठोर तप में संलग्न हुये। चतुर्थ स्कन्ध के तेइसवें अध्याय में उनकी तपस्या एवं परलोक गमन का वर्णन किया गया है। उन्होंने भगवान सनत्कुमार द्वारा उपदेशित आध्यात्मयोग के माध्यम से श्री हरि की आराधना करने लगे। तप के प्रभाव से कर्म मल नष्ट हो गये जिससे उनका चित्त सर्वथा शुद्ध हो गया। प्राणायामों के द्वारा मन एवं इन्द्रियों के वासना जनित बंधन कट गये। वे परब्रह्म परमात्मा में अनन्यभक्ति संयुक्त हो गये –

तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्मामलाशयः।

प्राणायामैः संनिरुद्धषड वर्गश्छिन्न बन्धनः ॥8॥ स्क.4, अं.23

सनत्कुमारो भगवान् यदाहाध्यात्मिकं परम्।

योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥9॥ स्क.4, अ.23

आगे देहात्मबुद्धि की निवृत्ति से परमात्मस्वरूप की अनुभूति हुई तथा सिद्धियों के प्राकट्य पर उसमें उदासीनता बरतते हुये योगमार्ग के द्वारा मोहजनित प्रमाद–मुक्त हो गये। उन्होंने जब अन्तकाल आया तब चित्त को दृढ़तापूर्वक परमात्मा में स्थिर कर ब्रह्मभाव में स्थित हो अपना शरीर त्याग दिया –

तावन्न योगगतिभिर्यतिर प्रमन्तो, यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात।

एवं स वीर प्रवरः संयोज्यात्मानमात्मनि।

ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥13॥ स्क.4, अं.23

चौबीसवें अध्याय में महाराजा पृथु की वंशपरम्परा के वर्णन के साथ प्रचेताओं को भगवान शिव द्वारा दिये गये योगोपदेश का विवरण आया है। पृथु के पुत्र विजिताश्व ने अपने अन्यचार भाईयों को चारों दिशाओं का राजा बनाया। विजिताश्व ने इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त की थी। इनके पत्नी का नाम शिखण्डिनी था। इनके तीन सुपुत्र पावक, पवमान और शुचि थे। वसिष्ठ जी के शाप से अग्नियों ने ही उनके रूप में जन्म लिया था। आगे ये सभी योग मार्ग से पूर्ववर्ती रूप पा गये–

पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा।

वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥14॥ स्क.4, अं.24

विजिताश्व ने पूर्णतम परमात्मा की आराधना करके सुदृढ़ समाधि-द्वारा भगवान के

दिव्य लोक को प्राप्त किया–

यजंस्तल्लोक तामाप्र कुशलेन समाधिना।

विजिताश्व के नभस्वती नाम की दूसरी पत्नी से एक पुत्र रत्न हविर्धान हुआ। हविर्धान के छः पुत्रों में से बर्हिषद कर्मकाण्ड और योगाभ्यास में कुशल थे। उन्होंने प्रजापति पद प्राप्त किया –

बर्हिषत् सुमहाभागो हविर्धानिः प्रजापतिः।

क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरुद्वह ।।9।। स्क.4, अ.24

इनके दस पुत्र प्रचेता नाम से विहित हुये हैं। इन्हें स्वयं महादेव जी ने योगोपदेश दिया और कहा– तुम लोग स्वधर्म का पालन करते हुये मेरे बताये स्त्रोत्र का जाप करते रहो। मैंने तुम्हें योगादेश नाम का स्त्रोत्र सुनाया है। इसका एकाग्रता से आदरपूर्वक अभ्यास करो –

योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः।

समाहितधियः सर्व एतदभ्य सतादृताः ।।7।। स्क.4, अ.24

प्रचेताओं ने भगवान महादेव जी की आज्ञा से योगादेश पालन में दत्तचित्त हो, लग गये।

पच्चीसवें, छब्बीसवें, सताइसवें, अट्ठाइसवे तथा उन्तीसवें अध्याय में पुरजन की कथा कही गयी है। यथार्थतः यह कथा प्रतीकात्मक रूप से हम सभी से सम्बंधित है। सार संक्षेप में यहाँ वर्णन करना अभीष्ठ जान पड़ता है। कर्मकाण्ड में फँसे लोगों को यह कथा जागरण देने वाला है। प्रचेताओं के पिता प्राचीनबर्हि का चित्त कर्मकाण्ड में रमता जा रहा था। उस समय अकारण कृपालु श्री नारद जी ने राजा को विशुद्ध ज्ञान का उपदेश दिया। श्री नारद जी ने कहा–राजन ! सकाम यज्ञ में निर्दयतापूर्वक जिन हजारों पशुओं की बलि तुमने दिया है – उन्हें मेरी कृपा से आकाश में देखो। वे प्राप्त पीड़ा का तुमसे बदला लेने के लिये इन्तजार कर रहे हैं। इसी प्रसग में श्री नारद जी ने पुरंजय की कथा द्वारा राजा प्राचीनवर्हि को प्रबोधित किया है।

राजा पुरन्जय का अविज्ञात नामक एक मित्र था। राजा भोग लालसा से पीड़ित संसार में भटकता रहा परन्तु उसे मनोनुकूल राज्य नहीं मिला। एक दिन उसे भारत में नव द्वारों का नगर मिला। जिसकी शोभा उसके चित्त को सुख प्रदान करने वाली थी। अकस्मात नगर के उपवन में उसे एक सुन्दरी दिखाई पड़ी उसके दस सेवक थे। प्रत्येक सेवक सौ–सौ नायिकाओं का पति था। एक पाँच फन वाला साँप द्वार पाल रूप नगर रक्षक था। उस रमणी पर पुरन्जन आसक्त हो गया। उसने सुन्दरी से मीठे–मीठे वचनों तथा अपने पराक्रम का वर्णन करते हुये, प्रभावित करना चाहा। अन्ततोगत्वा पुरन्जय ने उस रमणी के सौन्दर्य पास में बँध कर उस पुरी में सौ वर्ष रहकर भोग भोगा। काम–परवश राजा पुरन्जय मूढ़ता को प्राप्त उस रमणी के कर्मो का ही अनुसरण करता था।

एक दिन राजा पुरन्जय शिकार खेलने वन में गया। लौटा तो उसकी प्रिया उससे

अप्रशान्त हो उठी थी। पुरन्जय मधुर वचनों में अपने अपराध को स्वीकार करते हुये उसे भाँति–भाँति से मनाता रहा।

सत्ताइसवें अध्याय मे पुरन्जन पुरी पर चण्डवेग का आक्रमण तथा काल कन्या का चरित्र वर्णन किया गया है। इस अध्याय में कामातुर पुरन्जन के विहार करते हुये आधा उम्र क्षण समान व्यतीत हो गया। इसी काल में चण्डवेग नामक गन्धर्वराज ने अपनी बड़ी सेना से पुरन्जय के नगर पर आक्रमण कर नगर को लूट लिया और महाबलवान सर्प को भी पराजित किया। काल कन्या को यवनराज भय ने अपना बहन बनाकर उसे कहा – तू सबका अनिष्ट करने वाली है, हम, मेरा भाई और तू सारी प्रजा का नाश करने में समर्थ होंगे। भय, काल कन्या ने भी जर्जर हुये पुरन्जय राजा को घेर लिया। राजा मारा गया। स्त्री में आसक्ति होने से वह नृपश्रेष्ठ विदर्भराज के यहाँ सुन्दरी कन्या के रूप में जन्म लिया। युवती होने पर विदर्भ राज ने पाण्ड्य नरेश मलयध्वज से विवाह कर दिया। पराक्रमी मलयध्वज आगे चलकर अपनी पत्नी सहित मलय पर्वत पर जाकर योगनिष्ठ हुये। कालान्तर में राजा मलयध्वज के निर्वाण प्राप्त करने पर पूर्व का पुरन्जय वर्तमान में विदर्भराज की कन्या बहुत व्याकुल होकर विलाप करने लगी। उस समय पूर्वकाल का मित्र अविज्ञात ने प्रकट होकर उसे आत्म बोध कराया। पूर्व कालों की स्मृति कराकर उसे हंसत्व की प्राप्ति करा दिया।

इस प्रतीक कथा में मनुष्य के जीवत्त्व से शिवत्व की प्राप्ति बताई गयी है। एक ही आत्मा विद्या और अविद्या के कारण ईश्वर तथा जीव की उपाधि धारण करता है। जीव ही पुरन्जय है तथा अविज्ञात नामक उसका मित्र ईश्वर है। मानव देह ही वह पुर है जिसमें नव द्वार हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान पाँच फन वाला नगर रक्षक सर्प बताया गया है। हृदय अन्तःपुर है। बुद्धि ही राजमहिषी है। जिसके प्रभाव में सदैव जीव रूपी पुरन्जय नाचता रहता है। बड़े विस्तार से इन्द्रियों एवं विषयों के प्रतीकों का वर्णन किया गया है। जिसके द्वारा काल का ज्ञान होता है, वह संवत्सर ही चण्ड वेग नामक गन्धर्वराज बताया गया है। वृद्धावस्था ही साक्षात् काल कन्या है। मृत्युरूप यवनराज ने कालकन्या को लोक संहार करने हेतु बहन बना लिया है। आधि–व्याधि ज्वर सब उसके सैनिक हैं। मरकर कर्मानुसार भिन्न – भिन्न योनियों का चक्कर जीव लगाता रहता है। कर्म तथा कर्मफल – भोग दोनों अविद्या युक्त हैं। अतः जब तक जीव का अज्ञान–निद्रा नहीं टूटता, जन्म–मरण से छुटकारा नहीं मिलता। सच तो यह है कि जब हृदय में बार–बार श्री प्रभु का चिन्तन करते रहने पर उन श्री प्रभु की कृपा जब जीव पर होती है, तब ही उसे सत्यमार्ग उपलब्ध होता है। नारद जी ने भाँति – भाँति के उदाहरणों द्वारा कर्मकाण्ड में आसक्त राजा बर्हिष्मन को उपदेश दिये। आगे बोले– राजन तुम अपने चित्तको हृदय में निरुद्ध करो। सभी विषयों से विरत हो जाओ। राजन ! तुम्हारा कल्याण हो। मन ही मनुष्य के पूर्व रूपों को तथा भावी प्राप्त होने वाले शरीर को भी बता देता है। जिनका भावी जन्म नहीं होने वाला होता है, उन तत्व वेत्ताओं को विदेहमुक्ति का पता भी उनके मन से ही लग जाता है –

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ।

भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यत: ।।66।। स्क.4, अ.29

राजन ! पंचतन्मात्राओं से बना हुआ तथा सोलह तत्वों के रूप में विकसित यह त्रिगुणमयी संघात ही लिंग शरीर (कारण) है। यही चेतना युक्त जीव कहा गया है। मन: प्रधान यह लिंग शरीर ही जीव के जन्मादि का कारण है। श्री नारद जी ने बहु – भाँति राजा प्राचीनवर्हि को जीव और ईश्वर के तात्विक स्वरूप का दर्शन कराया। राजावर्हि को वैराग्य हुआ, वे राज्य पुत्रों को सौंपकर साधना हेतु कपिलाश्रम चले गये। वहाँ विषयों की आसक्ति छोड़ एकाग्रमन से भक्ति पूर्वक श्री हरि के चरणकमलों का चिन्तन करते हुये सारूप्यपद प्राप्त किया –

तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्द चरणाम्बुजम ।

विमुक्तसङ्गोऽनुभजन भक्तया तत्साम्यतामगात् ।।

सूचना

पावन श्री सिद्ध गुफा के ऊपर सुन्दर लेन्टर डाला जायेगा एतदर्थ जो गुरुभक्त आर्थिक सहयोग करने के इच्छुक हों निम्न पते व खाता संख्या में अपनी सेवा अर्पित कर सकते हैं।

पता निम्न है एत्मादपुर कैनरा बैंक का

I.F.S.C. CNRB 0000371

0371101026843

खाता दासलाल शर्मा व अन्य दो के नाम है ।

ज्योति-पुंज से ज्योति कलश छलके

– श्रीमती शारदा सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

श्रीगुरुदेव की कृपा से भक्त की मन:स्थिति का चित्रण :–

देखिए विचारों का क्रम किस तरह मन पर छा जाता है :–

एक छोर पकड़ते हैं तो दूसरा छोर आँखों के आगे–घूम जाता है। विचारों का धारा प्रवाह हिलोरे लेने लगता है। एक एक कर विचारों की लड़ियाँ साकार हो जाती हैं। प्रभुदेव व गुरुदेव की साकार झलक सामने पाते हैं। हम फिर खो जाते हैं। यही जीवन का क्रम चलता है। विचार, भावना और कल्पना का अंबार लग जाता है। हर पल – हरक्षण एक सुखद आभास में डुबा देता है। हम निश्चिंत हो आगे बढ़ते जाते हैं। सहज हो जाते हैं लगता है कोई हमारा अटूट सहारा बन दृढ़ता से हमें थाम लेता हैं। अपनी परेशानियों को विस्मृत कर हम आगे बढ़ जाते हैं। विचारों का बाँध टूट पड़ता है। भाव हमें कलम चलाने की प्रेरणा देते हैं। भावनाएँ बहती–चली जाती हैं, हम आत्म विभोर हो कहीं खो जाते हैं। किसी दृढ़ सहारे के आगोश में हम चैतन्य हो कल्पना लोक में विचरण करने लगते हैं। दूर कहीं दूर चलते चलते खो जाते हैं। कलम चल पड़ती है और हम विचारों को लेखनी के माध्यम से बाँधने का प्रयास करते हैं :–

नाना भांति के प्रश्नों से उलझती कसमसाती
जिंदगी को सुलझाता तुम्हारा दर्शन
उसी से मिलता प्रश्नों का सह जहल
सही मार्ग पा हम बढ़ाते अपने कदम
आपका आभास पा कठिन से कठिन
बेला भी हो जाती सरल
प्रभो तुम्हें बार बार नमन वंदन......(1)

ध्यान का प्रस्फुटन हो आलोकित होता मन
तुम्हारा चिंतन बनता स्पंदन
करता मन बार–बार
आपका चरण वंदन......(2)

जीवन पल–पल जाता गुजर
कोई सही राह ना आती नज़र
किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन
थम जाते हमारे कदम
तब आप हाथ थाम
सही राह पर बढ़ाते अपने कदम
भगवन आपका करें
हम बार–बार चरण वंदन..........(3)

समय की विडंबना से
निराश हो सकते हमारे कदम
प्रभु से नव चेतना का प्रस्फुटन हो
नव जीवन पा बढ़ते हमारे कदम
करूँ मैं गुरु–चरणों का बार–बार वंदन...(4)

जीवन की सांसारिक रुकावटों से
भारी होता हमारा मन
प्रभु से पुनः चेतना का संचार पा
हम बढ़ाते अपने कदम
नतमस्तक हो करूँ मैं बार–बार वंदन.....(5)

सत्य स्वरूपा देवाधिदेव गुरुदेव
का करूँ मैं बार–बार वंदन
भक्ति – रस की भीनी सुगंध का
सहारा पा दृढ़ होता मन
अदम्य साहस पा हम बढ़ाते आगे कदम
करूँ मैं बार–बार चरण–वंदन
प्रभुदेव नमन गुरुदेव नमन.....(6)

आँखें पथरा जाती
लगता कोई ना अपना आधार
तभी मिलता आपसे सबल आधार
हम धन्य हो फिर खड़े हो जाते
बढ़ाते आगे कदम
करुँ मैं बार–बार वंदन.....(9)

भव सागर के क्रूर थपेड़े
करते आहत मन
आपका सहारा पा
बन जाता सबल मन
हम बढ़ाते आगे कदम
तुम्हारा चिंतन बनता
हृदय स्पंदन
प्रभुदेव नमन गुरुदेव नमन
करुँ मैं बार–बार वंदन.....(8)

शोक संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि काल्पी जिला जालौन निवासी श्री जगदीश प्रसाद गुप्ता के बड़े सुपुत्र श्री राम गुप्ता के अपनी पत्नी के साथ ही रोड एक्सीडेन्ट में 11 अप्रैल को देहावसान हो गया है। उनके साथ ही एक और दम्पति की भी इन्हीं की गाड़ी में दुर्घटना हुई है। ये लोग यमुना एक्सप्रेस वे से दिल्ली की ओर जा रहे थे। भाई जगदीश गुप्ता जी को पुत्र वियोग की इस दुःखद बेला में सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त कर रहा है। श्री गुप्ता जी को प्रभु जी धैर्य प्रदान करें और इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति दें।

जय गुरुदेव की !

सम्पादक
सिद्धयोग

जाबाल दर्शन के अनुसार तप एवं जप का वर्णन

तप, संतोष, दान, आस्तिकता, लज्जा, मति, जप, व्रत, ईश्वर पूजा और सिद्धान्तों का सुनना यह दस नियम कहे हैं, इनका वर्णन करता हूँ। वेद में वर्णित कृच्छ और चान्द्रायण आदि व्रतों द्वारा देह क्षीण करने को ही विद्वजन 'तप' कहते हैं। मोक्ष के स्वरूप और आत्मा के संसार बंधन को प्राप्त होने वाले कारण के विचार को ही तत्व ज्ञानीजन तप कहते हैं। ईश्वरेच्छा से जो कुछ प्राप्त हो जाये उसी में संतोष एवं प्रसन्नता बनी रहे, उसे ही ज्ञानीजन संतोष समझते हैं। सर्वत्र अनासक्त रहकर ब्रह्मादि देवों के लोक तक के सुखों से विरक्ति हो और तब भी मन प्रसन्न रहता हो, वही श्रेष्ठ संतोष है। वेदों और स्मृतियों में कहे हुए धर्म में दृढ़ आत्मा का होना आस्तिकता कहा गया है। जो धन आदि आवश्यक वस्तुएँ संकटग्रस्त वेदज्ञ पुरुषों अथवा श्रेष्ठ आचरण वालों को दी जायें, वही मेरी दृष्टि में 'दान' है।

असत्य भाषण आदि दोषों से परे रहने से अदूषित वाणी, राग आदि विकारों से मुक्त रहता हुआ हृदय तथा हिंसा आदि क्रूरता से रहित कर्म ही ईश्वर पूजन रूप है। यह आत्मा सत्य, ज्ञान रूप, सर्वोत्कृष्ट, नित्य, अनन्त और अन्तर्यामी है। इस सिद्धान्त को बारम्बार सुनकर उसके अनुकूल विश्वास करना ही सिद्धान्त श्रवण है। वैदिक और लौकिक मार्गों में माने गये सिद्धान्त कर्मों के करने में जो स्वभावतः संकोच होता है वही लज्जा है। गुरुजनों के अनुमति देने पर भी वेद विरुद्ध मार्ग का अवलम्बन न कर वेदोक्त उपदेशों में पूर्ण श्रद्धा रखना ही मति है। वेदोक्त प्रकार से ही मंत्रों के बारम्बार जाप को ही जप कहा गया है। वेदों के समान ही धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास और कल्पसूत्रादि में मन का निरंतर लगे रहना है। मेरे विचार में 'जप' है। जप के दो भेद कहे हैं – एक वाचिक जप और दूसरा मानसिक जप। वाचिक जप के भी दो भेद कहे हैं – एक उच्च और दूसरा उपांशु। इसी प्रकार मानसिक जप के भी दो भेद हैं – एक मनन, दूसरा ध्यान। उच्च स्वर द्वारा किये गये जप की अपेक्षा उपांशु जप सहस्र गुणा श्रेष्ठ कहा गया है। जप की अपेक्षा मानसिक जप उससे भी सहस्र गुणा श्रेष्ठ है।

तर्कों की भाषा से परे है, ईश्वर की सत्ता

– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

ईश्वर अनादि और अनन्त है– इसे प्रायः सभी स्वीकारते हैं, पर अनीश्वरवादी इसे यह कहकर अमान्य कर देते हैं कि यदि ईश्वर अनादि और अनन्त होता, तो उसकी सृष्टि नाशवान क्यों होती ? अनन्त सत्ता की रचना भी अनन्त होनी चाहिए, पर ऐसा कहाँ देखा जाता है ? उसके क्रिया–कौतुक तो सीमित होते हैं, फिर उसके कर्त्ता को अनन्त कैसे माना जाय ?'

इन प्रश्नों पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाय, तो इन तर्कों में निहित भ्रान्ति स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः मनुष्य का ज्ञान स्वल्प है। उसे जो कुछ दिखाई पड़ता है, उसे ही सब कुछ मान बैठता है। इस संसार में हम नित नई–नई घटनाएँ घटित होते देखते रहते हैं, किन्तु उन घटनाओं के कई पक्ष होते हैं जो अविज्ञात होते हैं। सीमित इन्द्रिय–सामर्थ्य के कारण हम उन्हें जान नहीं पाते। इस पर कोई दृश्य पक्ष को ही पूर्ण मानकर उसकी विवेचना करे, तो यह उसकी भूल ही होगी। सूर्य किरणों में कितनी ही प्रकार की किरणों, विकिरणों का समावेश होता है, पर इन सब को हम आँखों से देख–समझ कहाँ पाते हैं ? पदार्थ के बाह्यस्वरूप को देखकर कोई यदि इनके मूल कारणों से इनकार कर दे, तो विज्ञान की नींव ही ध्वस्त हो जायेगी। फिर तो परमाणु बम का सिद्धान्त ही गलत हो जाये। मगर विज्ञान–जगत इनके अस्तित्व को स्वीकारता है, भले ही प्रत्यक्ष रूप से हम इनका अनुभव न कर सकें।

सृष्टि व पदार्थ सम्बन्धी ऐसे कितने ही नियम हैं, जिन्हें हम अभी जान नहीं पाये हैं। विज्ञान इन्हीं के उद्घाटन में लगा हुआ है। दस साल बाद वह जिन रहस्यों को जान सकेगा, उसे अभी वे ज्ञात नहीं हैं। इस पर विज्ञान यदि इस बात पर गर्व करे कि उसने पदार्थ जगत के सम्पूर्ण रहस्यों को समझ लिया है, उचित न होगा। वस्तुतः अब तक इस संसार को जितना कुछ जाना–समझा गया है, वह उसका एक स्वल्प अंश मात्र है। जिस भी पदार्थ के बारे में हम उसके पूर्णज्ञान का दावा करते हैं, वास्तव में उस संदर्भ में हमारा ज्ञान अधूरा होता है। उसका कोई–न–कोई पक्ष ऐसा होता है, जो अविज्ञात रहता है। जब उस पक्ष की जानकारी प्राप्त करते हैं, तो कोई अन्य अधूरापन सामने आता है, फिर कोई अन्य। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस सृष्टि की प्रत्येक घटना व पदार्थ में अनन्त नियमों का समावेश है। जब सृष्टि में अनन्त नियम हैं, तो उसका सृजेता सादि और परिमित कैसे हो सकता है ?

सम्भव है, कुछ लोग ध्वंस व निर्माण की प्रक्रिया को देख कर सृष्टि को नाशवान अथवा सादि समझ बैठे हों, पर यह तो इसका स्वभाव है। रात–दिन और जन्म–मृत्यु की भाँति बनना–बिगड़ना तो सृष्टि का स्वाभाविक क्रम है। जिस प्रकार रात के बिना दिन और मृत्यु के बिना जन्म की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार ध्वंस के बिना सृजन कैसे सम्भव हो सकता है? समग्रता तो दोनों के मिलने से बनती है। भूल तभी हो जाती है जब हम दोनों क्रियाओं को दो पृथक

घटना मान बैठते हैं। वस्तुतः ये एक ही घटना के दो पक्ष हैं। एक के बाद दूसरा अवश्य घटित होता है। इस प्रकार यह एक प्रवाह का निर्माण करते हैं, जो सदा प्रवाहमान रहता है। यदि कोई यह कहे कि इस सृष्टि से पूर्व कोई सृष्टि थी ही नहीं, अथवा इसके बाद रहेगी ही नहीं, तो यह कैसे सम्भव है ? ध्वंस और सृजन का यह प्रवाह तो अनादि काल से चलता आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। इसी को संसार का गति चक्र कहा गया है। यह इसलिए, क्योंकि जिस प्रकार रथ के पहिये का कोई आदि–अन्त नहीं होता, वैसा ही यह सृष्टि प्रवाह है। अतः सृष्टि को सादि कहना ठीक न होगा। यदि ऐसा मान भी लिया जाय, तो अनेक ऐसे प्रश्न उठ खड़े होंगे, जिनका उत्तर दे पाना सम्भव न होगा। यथा यदि ईश्वर की यह पहली रचना है, तो अब तक वह चुप क्यों बैठा रहा ? फिर अचानक संसार–सृजन की प्रेरणा उसे कहाँ से मिली ? इससे सम्बन्धित अनुभव कहाँ से प्राप्त हुआ ? ज्ञान और क्रिया कैसे उत्पन्न हुई ? क्रिया और शक्ति यदि आरम्भ से ही थी, तो अब तक निष्क्रिय क्यों पड़ी रही ? आदि–आदि। अस्तु यह मानना ही पड़ेगा कि यह भगवत सत्ता अनन्त है।

यह तो काल सम्बन्धी सृष्टि की अनन्तता हुई। आकाश सम्बन्धी अनन्तता पर विचार करने से भी यही निष्कर्ष सामने आता है कि यह विश्व–ब्रह्माण्ड विशाल है। इसकी अनन्तता का दिग्दर्शन भगवान राम ने एक बार माता कौशल्या एवं काकभुशुण्डि को कराया था। वस्तुतः इस सृष्टि में अनेकानेक स्थूल–सूक्ष्म सृष्टियाँ हैं। हम लोग अभी इस दृश्य जगत को ही भली–भाँति नहीं समझ पाये हैं, तो सूक्ष्म जगत को कैसे जान–समझ पायेंगे ? इन्द्रिय सामर्थ्य के अभाव में ही हमें उनकी प्रतीति नहीं हो पाती और स्थूल संसार को ही हम सब कुछ मान कर उसे सादि समझ बैठते हैं, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। इस प्रकार जब सृष्टि की अनन्तता सिद्ध हो गई, तो उसे बनाने वाला अनादि अनन्त नहीं होगा– यह कैसे कहा जा सकता है ? सच तो यह है कि जो अनन्त नहीं है, वह अनन्त सृष्टि की रचना कर ही नहीं सकता।

यजुर्वेद में इसी बात को स्वीकारते हुए भगवतसत्ता को अनन्त सिर वाला, अनन्त नेत्रों और पैरों वाला बताया गया है और कहा गया है कि वह सत्ता सृष्टि को हर ओर से घेरे हुए है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि उसका एक चौथाई भाग है। तिगुना अंश तो अमृत है। तात्पर्य यह है कि हम जो कुछ देखते हैं, वह उस विराट सत्ता की स्थूल व नगण्य अभिव्यक्ति मात्र है। इसका अधिकांश अमृत भाग तो हमें दिखाई ही नहीं पड़ता। सृष्टि तो अनित्य है। इसमें उस महत् सत्ता का अमृत दिखाई भी कैसे पड़ सकता है ? जो सृष्टि के विनाश व निर्माण की प्रक्रिया को देखकर उसके निर्माता को भी ऐसा मान बैठते हैं, वे भूल करते हैं। शरीर मरणधर्मा है– इस आधार पर कोई आत्मा को भी नाशवान बताये, तो यह उसकी अल्पज्ञता होगी।

शरीर तो आत्मा का उपकरण मात्र है। इसी प्रकार परमात्मा का उपकरण यह सृष्टि है। यदि सृष्टि न होती तो उसे जान–समझ ही कौन पाता ? अतः सृष्टि के आधार पर उसके नियन्ता के गुण–स्वरूप निर्धारित करना समीचीन न होगा। सृष्टा अनन्त है। उसकी अनन्तता उसके अमृत में समाहित है क्योंकि अमृतत्व परिमितता की निशानी है। अथर्ववेद इसी का उद्घोष करते हुए कहता है कि **"यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति"** अर्थात् ईश्वर तीनों कालों से परे है।

कुछ लोगों का कहना है कि मनुष्य सीमित–परिमित है, फिर वह अनन्त ईश्वर को समझने का दावा किस आधार पर करता है ? कोई चींटी हिमालय की विशालता को कैसे जान सकती है ?

प्रश्न वस्तुतः सही है पर विलक्षण मानवी मस्तिष्क को दृष्टिगत रख इसका उत्तर दिया जाना चाहिए न कि तर्क द्वारा। प्रायः अनन्त उसे कहा जाता है, जिसके अन्त का या तो हमें अनुभव नहीं होता अथवा जिसे तर्क द्वारा हम सिद्ध नहीं कर सकते। किन्तु हमारी बुद्धि इन दोनों कामों को सरलतापूर्वक कर सकती है। हम जिस कुर्सी पर बैठते हैं, उसमें लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई है। वह सीमित जगह घेरती है। अतः देश अथवा आकाश की तुलना में वह अनन्त नहीं है, क्योंकि हमें उसकी निश्चित सीमा का पता है। इसी प्रकार काल की दृष्टि से भी वह अनादि नहीं है, क्योंकि किसी ने अवश्य उसे बनाया है। जब सृजन हुआ है, तो निश्चय ही उसका अन्त भी होगा। हम चाहें जब कभी भी उसे तोड़ सकते हैं। इस तरह मस्तिष्क ने इसे भली प्रकार जान लिया कि कुर्सी के आदि और अन्त दोनों छोर हैं, अतः वह अनन्त न होकर परिमित वस्तु है। आकार की दृष्टि से यह छोटी होती है और इसका बनना–बिगड़ना भी हमारी आँखों के सामने घटित होता है, अस्तु इसके सादि होने में कोई संदेह नहीं रह जाता। पर जब हम किसी पहाड़ के निकट जाते हैं, तो न तो हमें उसका कोई ओर–छोर दिखाई पड़ता है, न उसके ध्वंस–सृजन की प्रक्रिया हमारे आँखों के सामने होती है, फिर हम उसे अनादि–अनन्त कहाँ मान लेते हैं ? यदि ओर–छोर का दिखाई न पड़ना ही अनन्तता का सूचक होता, तो निश्चय ही हमारा मस्तिष्क पहाड़ को अनन्त मान लेता, पर व्यवहार में ऐसा होता नहीं देखा जाता है, अतः यह कहना कि मस्तिष्क सादि–अनादि में विभेद नहीं कर सकता, गलत है। समुद्र के निकट जाकर दृष्टि दौड़ाने से जल– ही जल दिखाई पड़ता है। इतने पर भी मन–मस्तिष्क उसे अनन्त स्वीकार नहीं करता।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि ईश्वर और उसका सृष्टि–प्रवाह अनन्त है। यदि उसे अनादि के स्थान पर सादि मान भी लिया जाय, तो फिर प्रश्न उठेगा कि ईश्वर को बनाने वाला कौन है? जिसने उसे बनाया, उसे किसने बनाया ? इस प्रकार के प्रश्नों का कोई अन्त नहीं होगा। यदि यह माना जाय कि ईश्वर को किसी ने बनाया नहीं, वह स्वतः उत्पन्न हो गया, तो सृष्टि रचना के लिए उसकी आवश्यकता क्यों ? वह भी स्वयं क्यों नहीं हो जाती। फिर तो यह तर्क भी प्रस्तुत किया जाने लगेगा कि जिस ईश्वर को स्वयं उत्पन्न होने की आवश्यकता पड़ती है, वह इतनी सुन्दर और सुव्यवस्थित दुनिया कैसे बना सकता है? यह सही भी है। इस प्रकार इन तर्कों से ईश्वर की उत्पत्ति किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती। जो वस्तु उत्पन्न हुई नहीं, वह अवश्य ही अनादि–अनन्त है, इसमें तनिक भी संशय नहीं किया जाना चाहिए। संशय ही सभी विभ्रमों–कुतर्कों का मूल है। आस्तिकता विज्ञान सम्मत तो है ही, पर वह हमें चिन्तन के आयाम से ऊँचा उठकर भावनात्मक धरातल पर उठने की प्रेरणा देती तथा भ्रान्तियों से भी मुक्त करती है।

योगेश्वर गम्भीरनाथ जी महाराज का जीवन वृत्त

शिवकल्प गोरखनाथजी का साधन–जीवन गम्भीरनाथ का आदर्श था। सांसारिक आवेष्टन से बाहर सघन वन में बैठ कर इस महायोगी ने दीर्घकाल तक तपस्या की थी। उन्होंने असाधारण योगेश्वर्य एवं ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। उसी परम प्राप्ति की आशा में गम्भीरनाथ व्याकुल हो उठे। कठोरतर तपस्या के लिए तैयार होने में विलंब करना अब उनके लिए असह्य हो उठा।

अध्यात्म–अनुभूति का द्वार अब एक–एक कर खुलता जा रहा था। इसलिए साधक को इच्छा हुई कि किसी सुदूर निर्जन स्थान में जाकर निरवच्छिन्न साधन में लग जाएँ। गुरु गोपालनाथ जी ने इस बार उन्हें बाधा नहीं दी। तीन वर्षों तक अपने घनिष्ठ साहचर्य में रखने के बाद उन्होंने अपने स्नेह भाजन शिष्य को आश्रम त्यागने की अनुमति दी।

गोरखपुर से दक्षिण दिशा में उन्होंने यात्रा आरंभ की। पहले वह विश्वनाथपुरी वाराणसी पहुँचे। वाराणसी युग–युगांतर से साधकों की चिर अभिलषित तपोभूमि रही है। उनकी इच्छा हुई कि कुछ दिनों तक यहाँ रह कर साधन–भजन करें। अकिंचन योगी केवल एक कौपीन और कंबल का संबल साथ लेकर मार्ग पर बढ़ते चले जा रहे हैं। भूख, प्यास और टिकने के स्थान की ओर उनका बिल्कुल ध्यान नहीं है। उस समय उन्होंने अयाचक वृत्ति ग्रहण कर ली थी।

मार्ग पर चलते–चलते एक दिन गम्भीरनाथजी बहुत थक गये। भूख–प्यास से व्याकुल हो रहे थे। इसी समय देखा गया कि एक पूर्व परिचित ब्राह्मण तेजी से उनकी ओर बढ़ता चला आ रहा है। समीप आकर उसने गम्भीरनाथ को एक वृक्ष की छाया में बैठाया। इसके बाद सविनय कहने लगा, "गत रात श्रीनाथजी ने मुझे स्वप्नादेश दिया – 'इस स्थान में एक श्रांत, क्षुधा – पीड़ित परिव्राजक का आगमन होगा, तुम उसके भोजन एवं सेवा परिचर्या की व्यवस्था करो।' ब्राह्मण इसीलिए वहाँ दौड़ा हुआ आया था। अयाचित रूप में प्राप्त भोजन की वस्तुओं को खा लेने के बाद गम्भीरनाथ जी ने फिर चलना आरंभ कर दिया।

काशी पहुँचने पर उन्हें असीम आनंद प्राप्त हुआ। उनके विचार से यह प्रसिद्ध तीर्थ सब तीर्थों का राजा था। गंगा स्नान एवं विश्वनाथ जी की पूजा समाप्त करके उन्होंने नदी तट में एक निर्जन स्थान चुन लिया और वहीं लगातार तीन वर्षों तक योग साधना में निमग्न रहे। उन्होंने यहाँ तप करते हुए अनेक उच्चतर आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त कीं। एक शक्तिमान साधक के रूप में उनकी ख्याति बढ़ने लगी जिससे योग–साधना के अनुकूल निर्जन परिवेश नहीं रह गया। इसलिए गम्भीरनाथ जी ने काशी का परित्याग कर दिया।

इसके बाद प्रयाग उनका साधन स्थान हुआ। झूसी के एक एकांत स्थान में बालू की

गुफा में रहकर वे कठोर तपस्या करने लगे। संयोगवश मुकुटनाथ नामक एक युवक साधु वहाँ कहीं से आ पहुँचे। अध्यात्म–साधना के क्षेत्र में वे भी नागपथ के ही अनुयायी थे। साधक गम्भीरनाथ उस समय निरवच्छिन्न ध्यान–जप एवं योगसाधना में निमग्न थे। सर्दी, धूप, वर्षा सहन करते हुए वे तपस्या में रत थे। शरीर की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं था। न मालूम क्यों, तरुण साधक मुकुटनाथ ने इस त्याग तितिक्षामय योगी के प्रति एक विशेष आकर्षण का बोध किया। इस समय से साधनारत गम्भीरनाथ की समस्त सेवा का भार उन्होंने साग्रह अपने ऊपर लिया।

गम्भीरनाथ जी क्रमशः योग साधना की गहनतम अवस्था में निमग्न होते जा रहे हैं। उनके अंतर में उस समय तीव्र व्याकुलता एवं अदम्य संकल्प था – योग सिद्धि की उच्चतम स्थिति पर उन्हें पहुँचना ही होगा। साधन गुफा के बाहर इस समय वे कदाचित् ही निकला करते थे। बाहर के लोगों के साथ मिलना जुलना तो दूर रहा, एकनिष्ठ सेवक मुकुटनाथ के साथ भी उनकी बहुत कम बातचीत हुआ करती थी। जिस दृढ़ संकल्प एवं एकाग्रता को लेकर वे योग – साधना के व्रती हुए थे, इस समय अनेकांश में वह सफल हो रही थी। एकनिष्ठ तपस्या के फलस्वरूप उनकी साधना सत्ता में असाधारण योग–शक्ति विकसित हो उठी।

झूसी की इस बालुकामय गुफा में गम्भीरनाथ ने लगातार 3 वर्ष व्यतीत कर दिये। इसके बाद प्रयाग छोड़कर उन्होंने नर्मदा की परिक्रमा करने का व्रत ग्रहण किया।

कठोर तपस्या के फलस्वरूप इस बार गम्भीरनाथ जी ने साधना की स्थिर भूमि प्राप्त की। इसके बाद उनके साधक जीवन में व्यापक पर्यटन का दौर आरम्भ हुआ। भारत के समतल और पहाड़ी प्रदेशों में सर्वत्र, जहाँ जो कुछ सुगम और दुर्गम तीर्थ हैं, एक–एक की उन्होंने यात्रा की। अपने परिव्राजक जीवन में उन्होंने विचित्र अनुभव प्राप्त किये और इस प्रकार के जीवन को कल्याणकर बताया। अपने शिष्यों से कहा करते थे, 'जान रखो, नित्य के जीवन के अभाव अभियोग, सुख–दुःख के सम्पर्क में आकर पर्यटन करने वाले साधक के भ्रम और संशय नष्ट हो जाते हैं – वैराग्य भाव सुदृढ़ होने पर उनकी देहात्म–बुद्धि भी क्रमशः नष्ट हो जाती है। पर्यटन का सबसे बड़ा लाभ यही है।'

परिव्राजक गम्भीरनाथजी एक बार कुछ समय के लिए गुरुधाम गोरखपुर लौटकर आये। इस बीच सिद्ध पुरुष के रूप में जन–समाज में उनकी अच्छी ख्याति हो गयी थी। उनके त्याग एवं तप की चर्चा भी साधु संतों में विशेष रूप से हुआ करती थी। प्रिय शिष्य को पुनः समीप पाकर गोपालनाथ जी को जिस प्रकार अपार संतोष हुआ उसी प्रकार आश्रमवासी भी अत्यंत आनंदित हुए। किंतु मठ के जन–कोलाहलपूर्ण वातावरण में गम्भीरनाथ जी बहुत दिनों तक नहीं रह सके। परम तत्व की प्राप्ति की आकांक्षा आज भी उनके जीवन में पूर्ण नहीं हुई थी। इसलिए एकांत में तपस्या करने के लिए यह साधक व्यग्र होकर पुनः बाहर निकल पड़े।

गया के निकट ब्रह्मयोनि पहाड़ है। इसके शिखर पर कपिलधारा नामक एक मनोरम

निर्जन स्थान है। परिव्राजक संन्यासी एक दिन इसी के समीप आकर रुक गये। यह स्थान ही क्या उनकी अभीष्ट–सिद्धि की निर्दिष्ट भूमि है? मानो सहसा किसी ने इस स्थान के साथ घनिष्ठ योग बंधन की बात उन्हें जना दी हो। एक अपूर्व प्रेरणा अंदर उद्‌बुद्ध हो उठी और उन्होंने निश्चय कर लिया कि अपनी साधना की चरम सिद्धि के लिए इसी स्थान पर आसन लगाऊँगा।

स्थान का प्राकृतिक परिवेश बड़ा ही रमणीय था। तपोभूमि की पवित्रता मानो वहाँ के वायुमण्डल में ओत–प्रोत थी। तीन ओर तरू लता शोभित श्यामल पर्वत श्रेणी और एक ओर जंगल से होकर टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडी। नीचे समीप में ही जंगल से घिरा हुआ कपिलेश्वर शिव का प्राचीन मंदिर। समस्त अंचल में एक आश्चर्यजनक निःशब्दता एवं शून्यता छाई हुई थी। दो एक साधनारत सन्यासियों को छोड़कर वहां स्थायी रूप में रहने वाला और कोई नहीं था। आस–पास के स्थान भी किसी समय साधना एवं तपस्या भूमि के रूप में पुनीत हो चुके थे। विष्णुपाद यहाँ से बहुत समीप ही था। बुद्ध एवं चैतन्य ने यहीं सिद्धि प्राप्त की थी। इस पुण्यमय परिवेश में ही गम्भीरनाथ जी की साधना परिपूर्ण सिद्धि की दिशा में अग्रसर हुई।

कपिलधारा के निर्जन पहाड़ी प्रदेश में गम्भीरनाथ की तपस्या की धारा उस समय निरवच्छिन्न भाव से प्रवाहित होने लगी थी। कभी उन्मुक्त आकाश के नीचे, कभी ब्रह्मयोनि पहाड़ की गुफा में साधक आत्म समाहित रहा करते। शीत, वर्षा, ग्रीष्म एक–एक ऋतु आती और उनके मस्तक के ऊपर से होकर चली जाती। किसी दिन भी ऋतु परिवर्तन की ओर उनका ध्यान नहीं गया। अविचल निष्ठा के साथ अध्यात्म–जीवन के एक–एक स्तर को वे पार करते जा रहे हैं।

इस समय गम्भीरनाथ जी ने अपने बाह्य जीवन में बहुत कुछ त्याग कर दिया था। कृच्छव्रती कौपीन धारी संन्यासी के पास एक कंबल, नारियल का खप्पर और योग दंड के सिवा और कुछ नहीं था। कोई संगी या केवल भी नहीं था। अंतर्मुखी योगी दिन–रात ध्यान में निमग्न रहा करते थे।

योग–क्षेप भी इस समय मानो भगवान के अदृश्य संकेत पर ही पूरा हो रहा था। गया के पड़ोस में अक्कू कुर्मी नामक एक व्यक्ति रहता था। वह बड़ा गरीब था। जंगल से लकड़ी काटकर शहर में बेचता और इसी से जीविका निर्वाह करता था। लकड़ी काटने के लिए उसे बीच–बीच में कपिलधारा के जंगल में जाना पड़ता था। वहाँ एक दिन गम्भीरनाथ जी की दिव्य मूर्ति उसने देखी।

दर्शन के साथ–साथ अक्कू के जीवन में एक परिवर्तन घटित हुआ। नवीन तपस्वी के चरणों में आत्म–समर्पण किये बिना वह नहीं रह सका। धुनी के लकड़ी एवं आग जुटाने का भार उसने स्वेच्छा से अपने ऊपर ले लिया। इसके साथ ही साधु बाबा के लिए फलाहार और दूध भी वह ले आया करता था। यह कठोरव्रती साधक कौन थे, कहाँ से आये थे, कैसे थे यह वह नहीं

जानता था किंतु उनकी सेवा परिचर्या के लिए वह व्याकुल रहा करता था। बाद में उसका भाई मुन्नी भी साधु बाबा का भक्त बन गया। इस प्रकार क्रमश: सारा कुर्मी परिवार ही साधु बाबा की सेवा में निरत हो गया।

सीधा-सादा अक्कू और उसके परिवार के अन्य लोग 'साधु-बाबा को ही अपना अभिभावक और हितैषी समझने लगे। दु:ख विपत्ति पड़ने पर बाबा के निकट अंतर का आवेदन पहुँचाकर अपने हृदय का भार वे हल्का कर लेते। अक्कू- परिवार के इस अपनापन, सेवा एवं त्याग को देखकर गम्भीरनाथ जी उसके प्रति एक सहज आत्मीयता के बंधन में आबद्ध हो गए। केवल इस समय में ही नहीं, बाद में चलकर भी देखा गया कि योगी की स्नेहपूर्ण दृष्टि बराबर इस गरीब परिवार पर निबध्य रहती थी। उनके भाव एवं आचरण को देखकर सब लोग यही समझने लगे थे कि इस दरिद्र कुर्मी परिवार के प्रति वे अपने को चिर ऋणी समझते थे।

इसके बाद गम्भीरनाथ जी के एकान्त सेवक के रूप में दो नए साधक देखे गए -- नृपत्नाथ और सिद्धनाथ। गृहत्याग करने के बाद नृपत्नाथ सद्गुरु की खोज में विभिन्न स्थानों में भटक रहे थे। ऐसे समय में ही सहसा एक दिन कपिलधारा में गम्भीरनाथजी से उनका साक्षात्कार हुआ उसी दिन इस सौम्य दर्शन योगी के चरणों में आश्रय ग्रहण करने के लिए वे कृतसंकल्प हुए। बाबा गम्भीरनाथ सहसा किसी को दीक्षा देने के लिए राज़ी नहीं होते थे। इसलिए उस दिन उन्होंने नृपत्नाथ के आवेदन को स्वीकार नहीं किया। फिर भी नृपत्नाथ उन्हें ही गुरु मानकर एकान्त निष्ठा के साथ उनकी सेवा करते रहे। ध्यान-मग्न योगी की दैनंदिन परिचर्या का भार इस समय से प्रधानत: उनके ऊपर ही पड़ा।

केवल गम्भीरनाथ की देह-रक्षा का भार ही नहीं, उनके साधन-मार्ग में किसी प्रकार की विघ्नबाधा नहीं हो, इस ओर भी नृपत्नाथ की सजग दृष्टि रहती थी। योगी वर के निर्विघ्न साधन-भजन में जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी उन सबकी वे व्यवस्था करते हुए वे चारों ओर से उन पर पहरा देते थे। भयंकर भैरो वेष में सज्जितसेवक नृपत्नाथ को हाथ में त्रिशूल लिए प्राय: हिंसक जीव-जन्तुओं को भगाते हुए देखा जाता था। तीर्थ-यात्री कौतूहलवश गम्भीरनाथ जी की योग-साधना में विघ्न न डालें इस ओर भी नृपत्नाथ सतर्क रहा करते थे। उस समय भैरव वेश में नृपत्नाथ को देखकर बहुतों को ध्यान-मग्न योगी के सामने उपस्थित होने का साहस नहीं होता था।

गम्भीरनाथ के साधन-स्थल से कुछ नीचे खर्परभरव नामक स्थान में नृपत्नाथ और शुद्धनाथ रहा करते थे। योगी की सेवा परिचर्या कर लेने के बाद दोनोंकपिलधारा से नीचे उतर आते और अपनी पर्णकुटी में विश्राम करते। इससे गम्भीरनाथ जी को एकांत में अपनी कठोर तपस्या में अग्रसर होने का सुयोग मिलता।

ब्रह्मयोनि पहाड़ की एकांत गुफाओं में दो -- एक साधुतपस्वी स्थान-स्थान पर देखे जाते थे। धीरे-धीरे इन तपस्वियों में भी गम्भीरनाथ जी की योग-साधना की चर्चा फैलने लगी।

इसलिए ये कभी–कभी योगी के सम्मुख आ जाया करते थे। गम्भीरनाथ जी के समीप बैठकर साधनारत होने पर वे भी सहज ही गम्भीर ध्यान में डूब जाते थे। केवल ब्रह्मयोनि पहाड़ के आस–पास में ही नहीं, गया क्षेत्र में भी धीरे–धीरे इस महासाधक के योगेश्वर्य की ख्याति फैल गयी। कपिलधारा का दिव्य दर्शन एवं शक्तिमान 'महात्मा' की बात उस समय सब लोग जान गए थे।

गया के माधोलाल पंडा एक धनी व्यक्ति थे। संयोग से वे एक जटिल एवं विपज्जनक मामले में फँस गये। यदि यह मामला वे हार जाते तो उनके लिए दर–दर का भिखारी बनने के सिवाय और कोई चारा नहीं था और मामला का जैसा रंग–ढंग था उसमें उनके जीतने की तनिक भी आशा न थी। उनके सामने भविष्य अंधकारमय दिखाई पड़ता था। विपन्न माधोलाल निरुपाय होकर गम्भीरनाथजी के शरणार्थी हुए और साश्रु नेत्रों से योगी–प्रवर के सामने अपना दुःख कह सुनाया। उनकी दुःख कथा से बाबा द्रवित हो गये। उन्हें सांत्वना प्रदान करते हुए प्रशांत कंठ से बोले, ''चिंता मत करो। तुम्हारा भला ही होगा।''

अत्यंत अप्रत्याशित रूप में माधोलाल यह मुकदमा जीत गये और इस प्रकार सर्वनाश होते–होते बचा। इसके बाद से वे गम्भीनाथजी के एकांत भक्त हो गये और बराबर उनकी सेवा में दत्तचित्त रहने लगे। अपने इस भक्त के साग्रह अनुरोध पर गम्भीरनाथ जी ने उन्हें कपिलधारा के साधन स्थल में एक योग गुहा और वेदी निर्माण करने की अनुमति प्रदान की। लगभग बारह वर्षों तक लगातार वहीं रहकर गम्भीरनाथ जी साधन भजन करते रहे।

योग–गुहा के भीतर के प्रकोष्ठ में गम्भीरनाथ दिनरात ध्यानमग्न होकर समाधिरत हो जाते। सेवकगण उस प्रकोष्ठ के बाहर थोड़ा सा दूध उनके लिए रख जाते। जब उनका ध्यान टूटता, आवश्यक होने पर गम्भीरनाथ केवल वही दूध पी लेते। इस प्रकार वहाँ अवस्थान करते हुए वे योग साधना की उच्चतर अवस्थाओं को एक–एक कर पार करने लगे।

क्रमशः

जो सब की दृष्टि से दूर एकान्त में भी ''भगवान देख रहे हैं'' इस भय से कोई अधर्म–आचरण नहीं करता, वही यथार्थ धार्मिक है। निर्जन वन में सुन्दर नवयुवती को अकेली देखकर भी जो धर्म के भय से भीत होकर उस पर कुदृष्टि नहीं डालता, वही यथार्थ धार्मिक है। जो वीरान में, किसी उजड़े घर में मुहरों से भरी थैली देखकर भी उसे उठाने के मोह को रोक सकता है, वही ठीक–ठीक धार्मिक है। जो केवल दिखावे भर के लिए या लोग क्या कहेंगे इस भय से सिर्फ लोगों के सामने धर्म का अनुष्ठान करता है, उसे ठीक–ठीक धार्मिक नहीं कहा जा सकता। निर्जन, नीरव में अनुष्ठित होने वाला धर्म ही यथार्थ धर्म है, भीड़–भाड़ में, कोलाहल में अनुष्ठित होने वाला धर्म, धर्म नहीं।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

अष्टांग योग साधना (बहिरंग)

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

यद्यपि परमात्मज्ञान वैज्ञानिक अन्वेषणों का विषय नही है क्योंकि परमात्मा प्रकृति से परे है और वैज्ञानिक अन्वेषण प्राकृतिक साधनों पर निर्भर रहते हैं। प्रकृति भी परमात्मा की माया का कार्य है अत: कारण होने के नाते माया भी वैज्ञानिक अन्वेषणों का विषय नहीं हो सकती। अत: द्वैतसृष्टि का विज्ञान भी पूर्णरूपेण प्राकृतिक साधनों से नहीं प्राप्त किया जा सकता, तथापि महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग का ऐसा आविष्कार किया जो आंशिक रूप से बुद्धि का भी विषय है तथा मुख्यत: आध्यात्मिक चिन्तन तथा प्रज्ञानुभूतियों का विषय है। प्रथम कल्पित जीवभाव को समझने तथा त्यागने के लिए निश्चयात्मिका तथा विशुद्ध बुद्धि के द्वारा यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार के साधनों के द्वारा गुणविकारों को क्षीण करना तथा आध्यात्मिक चिन्तन के लिए अपनी योग्यता पुष्ट करना आवश्यक है। उसके उपरान्त ध्यान तथा समाधि के द्वारा चित्त की अशुद्धियों को नष्ट कर प्रज्ञानुभूतियों की भूमिकाओं में प्रविष्ट कर परमात्मभाव में प्रवेश करना होगा। ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति के बाद ही क्लेश तथा कर्मसंस्कारों का क्षय सम्भव है। इसके उपरान्त ही परमात्म–साक्षात्कार की स्थिति आती है जबकि –

> **अष्टांगयोगानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये,**
> **ज्ञानदीप्ति: आविवेकख्याते:।**
> **पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसव:**
> **कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्ते: इति।।**

(योगदर्शन)

अर्थात् महर्षि पतंजलि द्वारा आविष्कृत अष्टांगयोग की साधना करने पर अर्थात् अष्टांगयोग की श्रद्धाविश्वासपूर्वक चिरकाल तक निरन्तर साधना करने से जब चित्त की पंचक्लेश तथा कर्मसंस्कार रूपी अशुद्धि का नाश हो जाय और चित्त का निरोधपरिणाम (*जब चित्त से व्युत्थान की चित्तवृत्तियों का पूर्ण क्षय हो जाय तथा निरोधसंस्कार का प्रादुर्भाव हो जाय तब चित्त निरोधकाल में आत्मतत्व के रूप में दृष्टा से ही प्रकाशित रहता है। इसे चित्त का निरोधपरिणाम कहा जाता है।*) सिद्ध हो जाय तब आत्मज्ञान की ज्ञानज्योति स्वत: प्रकट हो जाती है। जब माया की द्वैतसृष्टि तथा भ्रान्तिज्ञान के मुख्य आदि कारण तीनों गुण पुरुषार्थशून्य होकर अपनी कारणभूता अविद्या माया में लुप्त हो जायें, तब आत्मतत्व अपने सत्यस्वरूप में प्रकट हो जाता है जिसे कैवल्यावस्था कहा जाता है।

इस अध्याय में हमें तीन विषयों पर गहराई से विचार करना है। प्रथम विषय है कि चित्त की अशुद्धि क्या है और इसके नाश के लिए किन–किन साधनाओं की आवश्यकता है।

साधनाओं की सिद्धि के बाद कब और कैसे वह ज्ञानदीप्ति प्रकट होकर माया के मलावरण का नाश कर परमात्मस्वरूप का ज्ञान कराती है जिसके उपरान्त –

आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः आनन्दरूपं अमृतं यद्विभाति।।

(मुण्डक उप. 2/7)

अर्थात् आत्मज्ञान होने पर स्वतः माया के रहस्यों का ज्ञान हो जाता है तथा उस विज्ञान को पाकर आत्मज्ञ महापुरुषों का चित्त आनन्दस्वरूप तथा अमृतस्वरूप आत्मतत्व से प्रकाशवान हो जाता है। दूसरा विषय है कि अष्टांगयोग क्या है और इसकी साधना कैसे की जाती है? तीसरा विषय है कि सात प्रान्तभूमि वाली प्रज्ञा की प्राप्ति की साधना किस प्रकार पूर्ण होती है और उसकी प्रत्येक प्रान्तभूमि में कैसी अनुभूतियाँ होती है। जब योगी चित्त के समाधिपरिणाम तथा निरोधपरिणाम सिद्ध करते हुए प्रज्ञा की उत्तरोत्तर श्रेष्ठ प्रान्तभूमियों से गुजरता है तब उसे परमात्मा की दिव्य तथा व्यापक शक्तियों की अपरोक्ष अनुभूतियाँ होती जाती हैं। इस योगसाधना की विशेषता यह है कि योगी के अन्तःकरण में माया तथा परमेश्वर के ऐश्वर्यों तथा रहस्यों का पर्दाफाश होता जाता है।

सर्वप्रथम हम उस अशुद्धि को जानने का प्रयास करेंगे जिसके क्षय के बिना आध्यात्मिक सिद्धि सम्भव ही नहीं। वह अशुद्धि है गुणविकारों के पंचक्लेश तथा उनसे उत्पन्न कर्माशय। इनसे उत्पन्न वृत्तियों के परिणाम तथा संस्कारों के अतिरिक्त तीनों गुणों का वृत्तिविरोध भी अन्तःकरण में मलावरण बनाता रहता है। यह पंचक्लेश मायाशक्ति के प्रमुख सैनिक हैं– वह हैं अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश। अविद्या की परिभाषा है –

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिः अविद्या।।

(योगदर्शन 2/5)

अर्थात् मिथ्या भ्रान्तिज्ञान कराने वाली शक्ति अविद्या है। इसके प्रभाव में अनित्य पदार्थ नित्य भासित होते हैं, जैसे संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील तथा कालान्तर में नाशवान है फिर भी हम उन्हें नित्य मानकर उनके इस स्वभाव से दुःखी होते हैं, अन्यथा सम्पत्ति के नष्ट होने पर या किसी प्रिय की मृत्यु पर हम दुःखी क्यों होते हैं। हम अशुद्धि में शुद्धि देखते हैं, अन्यथा हमारा शरीर अथवा हमारे प्रिय परिवार के सदस्यों का शरीर गुणविकारों से बना है, अशुद्धियों से भरपूर है फिर भी हम शुद्ध मानकर उससे प्यार करते हैं। हम दुःख में सुख तथा अनात्मा में आत्मा का भाव करते हैं, जैसे सभी विषय भोगों में होने वाली सुखानुभूति मिथ्या तथा भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि जिसका आदि तथा अन्त मिथ्या है उसका मध्य भी भ्रान्तिपूर्ण तथा मिथ्या है, उदाहरण के लिए कुत्ता हड्डी चूसने में सुख का अनुभव करता है, किन्तु वह हड्डी से घायल जबड़े से अपना ही खून चूसता है अथवा जैसे खुजली खुजाने से सुख का अनुभव होता है किन्तु रोग तथा दर्द दोनों बढ़ जाते हैं। इसीलिए शास्त्र का कथन है कि –

परिणामतापसंस्कारदु:खैः गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वं दु:खं विवेकिनः।।

(योगदर्शन 2/15)

ये हि संस्पर्शजाः भोगाः दु:खयोनयः एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।

(गीता)

अर्थात् सभी विषयभोगों के सुख वस्तुतः दु:खरूप हैं, क्योंकि उनका परिणाम जन्ममरण का दु:ख तथा कर्मबन्धन के कारण शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दु:खों का कारण है। आदि तथा अन्त में अस्तित्वहीन होने से भ्रान्तिमात्र हैं। अतः विद्वान उनमें रमण नहीं करते। इसी तरह सभी योनियों के शरीर पंचभूतात्मक होने से जड़ हैं फिर भी सभी जीवित प्राणी उन्हीं अनात्मा में आत्मा का अनुभव करते हैं। यही विपरीत भ्रान्तियुक्त ज्ञान अविद्या है। दूसरा क्लेश अस्मिता है जिसके द्वारा माया का भ्रान्तिजन्य खेल खेला जाता है। इसकी परिभाषा है –

दृग्दर्शनशक्त्योः एकात्मता अस्मिता।।

अर्थात् आत्मतत्व के रूप में दृष्टा तथा मायारचित इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि की एकात्मता अस्मिता कहलाती है। इस एकात्मता के कारण माया की जड़शक्तियाँ चैतन्यवान होकर संसार का व्यवहार करती हैं और उनकी असमर्थतायें तथा न्यूनतायें आत्मा पर आरोपित हो गयी हैं। मन की अनुकूलता से पदार्थों में आसक्ति राग क्लेश है तथा प्रतिकूलता से द्वेष क्लेश का जन्म होता है। यही राग तथा द्वेष गुणबन्धन के रूप में जीवात्मा को शरीर में बाँधकर रखता है तथा जन्म–मृत्यु का कारण बनता है। यही जन्म–मृत्यु के दु:ख का भय अभिनिवेश क्लेश है। यही पंचक्लेश कर्माशय की रचना करते हैं। इस तरह माया द्वारा संचालित गुणबन्धन तथा कर्मबन्धन जीवात्मा को मायाजाल में बाँधकर कल्पित द्वैतसृष्टि का निर्माण कर संसार का रूप देते हैं। वेदवाणी इसी ओर संकेत करती है कि –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्न्यो अभिचाकशीति।।
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः अनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।

(मुण्डक उप. 3/1/1,2)

स्थूलानि सूक्ष्मानि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैः वृणोति।
क्रियागुणैः आत्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुः अपरोऽपि दृष्टः।।

(श्वेता. उप. 5/12)

देह और देही ?

– परमहंस स्वामी योगानन्द

(आप महावतार बाबा के शिष्य परम्परा में तीसरी पीढ़ी में आते हैं, आपने पश्चिम के देशों में योग का बहुत प्रचार किया है।– संपादक)

अत्यन्त मलिनो देहो, देही चात्यन्त निर्मल:।

असंगोऽहमिति ज्ञात्वा, शौचमेतत्प्रचक्षते।।

अर्थ :– देह अत्यन्त मलिन है और देही – आत्मा अत्यन्त शुद्ध है, इसलिए मैं असंग हूँ ऐसा जानना इसी को शौच कहते हैं।

शेष परब्रह्म को दिखलाकर जिसका त्याग हुआ है ऐसे ज्ञानाज्ञान–अविद्या और उसका कार्य ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड शरीर है और शरीर ब्रह्माण्ड है। शरीर छोटा और व्यक्तिरूप है, ब्रह्माण्ड बड़ा और समष्टि रूप है, एक शरीर को समझाने से ब्रह्माण्ड समझा जाता है इससे शरीर का वर्णन करते हैं। यह शरीर अत्यन्त मलिन है क्योंकि मलिन स्थान से उसकी उत्पत्ति हुई है, मलिन पदार्थों से भरा हुआ है, वर्तमानकाल में भी मलिन ही रहता है और मृत्यु में मलिन–अपवित्र होता है, उसको छूने वाले मलिन होने से ही छूकर स्नान करते हैं। स्थूल शरीर, अस्थि, मांस, चर्म, मेद, रक्त, मज्जा, मूत्र, मल और लालादिक से भरा हुआ है, क्षण–क्षण में विकार को प्राप्त होता रहता है, अनेक व्याधियों का स्थान है, उत्पत्ति, स्थिति और नाश वाला है।

सूक्ष्म शरीर काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदि दु:खकर दुष्ट वृत्तियों का होने से अशुद्ध है और कारण शरीर अज्ञान स्वरूप जड़ होने से अपवित्र है इसी प्रकार दोनों शरीर सहित स्थूल शरीर अत्यन्त अपवित्र है।

शरीर का प्राप्त होना ही अशुद्धि का प्राप्त होना है, अविद्या अशुद्धि होने से अविद्या और अविद्या का कार्य रूप शरीर अपवित्र है, ऐसे शरीर की शुद्धि किसी प्रकार नहीं हो सकती। जो उसे शुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं वे मल–मूत्र को धोकर शुद्ध करने वाले के समान हैं। शरीर अशुद्ध है और आत्मा अत्यन्त निर्मल शुद्ध है ऐसा देखने वाला ठीक–ठीक देखता है। आत्मा शुद्ध साक्षी है; शरीर में रहकर भी असंग होने से शरीर की मलिनता आदि दोषों से लेपायमान नहीं होता। जैसे मृत्तिका का घट अशुद्ध पदार्थ भरने से अशुद्ध होता है, परन्तु उसमें रहा हुआ आकाश अशुद्ध नहीं होता तैसे देह की मलिनता से देह में रहा हुआ आत्मा मलिन नहीं होता, और जैसे घट को धोकर साफ करते हैं तब उस धोने की क्रिया का स्पर्श आकाश को नहीं होता वैसे ही शरीर की सफाई का स्पर्श आत्मा को नहीं होता।

देह की अशुद्धि का प्रायश्चित देही–आत्मा को नहीं है। आकाश सब स्थानों में सब पदार्थों में रहा हुआ है तो भी असंग होने से पदार्थों की मलिनता से मलिन नहीं होता, इसी प्रकार

आत्मा में स्वर्ग–नरक बंध मोक्ष और सुख दुःखादि द्वन्द्व नहीं होते। आकाश शुद्ध और असंग है तो भी अविद्या का कार्य होने से जड़ और अशुद्ध ही है और आत्मा तो सत्स्वरूप होने से स्वाभाविक ही शुद्ध स्वरूप है।

आत्मा की शुद्धता का आरोप अविद्या से देह में किया जाता है और अविद्या से शरीर की अशुद्धता का आरोप देही आत्मा में किया जाता है ऐसा अन्योन्याध्यास ही देही जीव के दुःखी होने का कारण है, वास्तव में तो देही शुद्ध है और देह अशुद्ध ही है। जैसे देह अशुद्ध होने से शुद्ध नहीं हो सकता ऐसे देही–शुद्ध स्वरूप आत्मा किसी प्रकार किसी से अशुद्ध नहीं हो सकता।

जब देह से अहं भाव रूप बुद्धि के पाप की निवृत्ति होती है तब ही अखण्ड निर्मल असंग सब प्रकार से पूर्ण ब्रह्म का स्फुरण होता है, मैं ब्रह्म हूँ, सत हूँ, असंग हूँ, आनन्द स्वरूप हूँ, अबाधित चैतन्य स्वरूप हूँ ऐसा दृढ़ अपरोक्ष आत्म–ज्ञान होना ही पवित्रता है ऐसे ज्ञान से ही शरीरादिक अहं भाव और मम भाव रूप मल का त्याग–शौच हो जाता है। देह में "मैं हूँ" ऐसा भाव अपवित्रता है उसका त्याग करके देही जो आत्मा है उसमें "मैं हूँ" ऐसा दृढ़ भाव होना पवित्रता है।

तेरे दर के सिवा कोई दर

– चन्द छवि चातक
विजय कुमार शर्मा
सहारनपुर

तर्ज : एक तू जो मिला

आया दर पे तेरे, संग कोई ना मेरे।
तेरे दर के सिवा, कोई दर ना मिला।
पाप कर्मों की अग्नि में, मैं जल रहा
कष्ट इतने मिले, मैंने सबको सहा
भूल ऐसी हुई, रूठी किस्मत मेरी
तेरे दर के ...

कर्म बन्धन से कोई ना बच पायेगा
कर्म जैसा किया वैसा फल पायेगा
सत कर्म तू कर, राह प्रभु जी की चल
तेरे दर के ...

मानव तन देके प्रभु जी ने मौका दिया
मुक्ति पाने को सद्गुरु का दर है दिया
द्वार गुरु जी के आ, अमृत ज्ञान को पा
तेरे दर के ...

कृपा प्रसाद सद्गुरु से जब पायेगा
त्रय तापों से मुक्ति भी पा जायेगा
तेरा शुद्ध होगा मन, होगा प्रभु से मिलन
तेरे दर के ...

श्री रघुराज के भांजे को प्राणदान

केशवदेव उपाध्याय

श्री सिद्ध गुफा सवाई से सम्बन्ध रखने वाले लगभग हमारे सभी गुरुभाई-बहन, योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के लाड़ले शिष्य ठाकुर चन्दन सिंह के नाम से अवश्य ही परिचित होंगे। आदरणीय श्री रघुराज जी इन्हीं चन्दन सिंह के सन्तानों में से एक हैं। चन्दन सिंह जी का परिवार महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा श्री सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपाओं से पूर्ण रूप से ओत-प्रोत है। आदरणीय रघुराज की उम्र बहुत कम थी तथा वे प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई कर घर वापस लौट रहे थे, उन्हें बहुत तेज प्यास लगी थी तथा उन्हें ऐसा आभास होता था कि बगैर पानी पिये वे मर ही जायेंगे। उन्होंने बाबा जी को याद किया और बाबा जी ने रास्ते में ही कूप (कूँआ) प्रकट कर उनकी प्यास शान्त की थी और उन्हें आशीर्वाद दिया था। ठाकुर रघुराज सिंह के मन में हमारे गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा नहीं थी। परन्तु महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरणों में इनकी अपार श्रद्धा थी। श्री गुरुदेव के एक रहस्य बोध ने इनके मन में, गुरुदेव के चरणों के प्रति श्रद्धा पैदा कर दी। संक्षेप में प्रसंग इस प्रकार रहा कि श्री रघुराज जी ने प्रार्थना किया कि महाप्रभु जी ने जीवों के कल्याणार्थ जो सोलह शरीर धारण किये थे उन सोलहों शरीर में से इस समय कितने शरीर हैं। श्री मुख ने समझाया था कि लल्ला! श्री प्रभुजी इस धराधाम पर चार शरीर से मौजूद हैं। जब श्री रघुराज जी ने प्रार्थना किया कि श्री प्रभुजी किस नाम से कहाँ विराजमान है तो आराध्यदेव ने रज प्रसाद देकर कहा था कि ध्यान में बैठकर देखो। श्री रघुराज जी ने ध्यान लगाकर देखा तो तीन शरीरों से भिन्न-भिन्न नाम तथा भिन्न-भिन्न स्थान पर विराजमान हैं, फिर चौथे शरीर से श्री गुरुदेव विराजमान मिले। इनको ध्यान की बातों पर बड़ा विस्मय और आश्चर्य हुआ एवं कुछ समयान्तर से तीन बार ध्यान लगाकर जब इन्होंने देखा तो चौथे प्रभुजी के रूप में हमारे गुरुदेव ही दृष्टिगोचर हुए। वे तत्काल ध्यान से उठकर गये एवं गुरुदेव भगवान के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर बोले। हे प्रभुजी! हमारा आपको बार-बार साष्टांग प्रणाम। श्री गुरुदेव भगवान ने इन्हें कन्धे से लगा लिया एवं बोले, लल्ला! रघुराज मैं प्रभु थोड़े ही हूँ, एकान्त वातावरण था। रघुराज ने प्रार्थना किया कि हे प्रभु! ध्यान की बात क्या झूठी होती है? श्री गुरुदेव भगवान ने मुस्कराते हुए कहा, नहीं लल्ला! ध्यान की बात झूठी नहीं होती। श्री रघुराज जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि हे प्रभु! ध्यान की बात झूठी नहीं होती तो आप प्रभु जी ही हैं, भले ही आप हमें गुरुदेव के रूप में मिले हो, इस घटना के बाद रघुराज का गुरुचरणों में अनन्यप्रेम हो गया। अब हम कृपा प्रसंग की मुख्य अंश की तरफ आपको ले चल रहे हैं।

श्री रघुराज की एक बहन कुमारी शारदा देवी की शादी बुलन्दशहर के श्रीराम सिंह तोमर के साथ हुई है। शादी के कई सालों बाद तक इस दम्पति को कोई सन्तान नहीं हुई तो,

रघुराज की माता जी ने गुरुदेव, भगवान से प्रसाद लेकर इस दम्पति को भिजवाया। प्रसाद सेवन के बाद श्रीमती शारदा देवी को एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम राजू रखा गया। इस लड़के के जन्म लेने से श्रीमती शारदा देवी के ससुराल के साथ–साथ मायके वाले भी काफी प्रसन्न हुए। इस कृपा प्रसंग के पूर्व ही श्री रघुराज जी के पूज्य पिता ठाकुर चन्दन सिंह परलोक सिधार गये। अपनी नाती को देखने की तीव्र इच्छा रघुराज जी के माता जी के मन में थी। उन्होंने श्रीमती शारदा देवी को अपने घर सवाई धाम बुलाने के लिए कई बार बुलावा भेजा परन्तु ससुराल वालों ने इस डर से कि राजू को कुछ हो न जाय, इसलिए सवाई ग्राम में नहीं आने दिया। जब राजू लगभग छः साल का हो गया तो रघुराज की माता जी ने श्रीमती शारदा देवी के पति और अपने दामाद को पत्र लिखकर रघुराज के द्वारा भिजवाया, जिसमें लिखा था कि मेरा शरीर अब वृद्ध हो गया है अब पता न कब प्राण निकल जाय अतः राजू और उसकी माँ को यथाशीघ्र सवाई ग्राम भेजें। ससुराल वालों ने केवल एक माह रुकने की शर्त पर राजू को उसकी माँ के साथ सवाई ग्राम भेजा। राजू को देखकर वैसे तो सभी मायके वाले प्रसन्न थे, लेकिन राजू की नानी सबसे ज्यादा प्रसन्न थी।

राजू आनन्द के साथ अपने ननिहाल में खेल–कूद और खाना–पीना कर रहा था अभी एक हफ्ते ही बीते होंगे, उसके ऊपर खाँसी का प्रकोप हुआ। और खाँसते–खाँसते प्रातः लगभग पौने चार बजे उसका प्राणान्त हो गया। उस समय भाई रघुराज जी की ध्यान स्थिति बहुत अच्छी थी और वे सवाई धाम पर रात्रि निवास करके ही अपने साधना कर रहे थे। लड़के के प्राणान्त होने के बाद राजू की माँ और उसकी नानी बहुत ही दुःखी परेशान एवं उदास हो गयी। शारदा देवी सोच रही थी कि ससुराल में जाकर हम कैसे मुख दिखाऊंगी और राजू की नानी सोच रही थी कि हे भगवन! हम पर कलंक लग ही गया। सभी लोग सवाई आश्रम से रघुराज का आने का इन्तजार कर रहे थे। रघुराज जी जब प्रातः साढ़े पाँच बजे घर पहुँचे तो राजू का शव जमीन पर लिटाकर उसके ऊपर सफेद चद्दर डाली गयी थी। उसकी माँ और बहन की आँखें रोते–रोते फुल गयी थीं। थोड़ी देर में ही रघुराज जी को वास्तविक परिस्थिति का बोध हो गया। वे मन ही मन रो रहे थे। उनकी माँ ने समझाया कि बेटा, रोओ मत। तुम इस रहस्य को नहीं जानते। भैया चन्द्रमोहन जी। पूर्ण योगी, स्वतन्त्र ईश्वर और सर्व समर्थ हैं। उनके अन्दर सब कुछ करने की सामर्थ्य है। उनके पास अभी चले जाओ और उनके पास जाकर उनको साष्टांग प्रणाम कर जैसा मैं कहती हूँ, वैसा उनसे प्रार्थना करना।

रघुराज जी के माता जी ने बतलाया कि सबसे पहले जाकर तुम साष्टांग प्रणाम करना फिर हाथ जोड़कर श्री चरणों में हमारा साष्टांग प्रणाम निवेदित करना। उनसे कहना कि मैं उनकी गुरुबहन हूँ और मैं यह अच्छी प्रकार जानती हूँ कि आप सब कुछ करने की सामर्थ्य में हैं। यदि इनकी उम्र इतनी ही थी तो इसे जन्म देने का प्रसाद क्यों दिया था? इसके मर जाने से हमारे ऊपर यह कलंक लग गया कि लड़का अपने ननिहाल में जाकर मरा। इस कलंक से छुड़ाने वाले मात्र आप ही हैं। यदि आप बहुत नहीं कर सकते, तो इसको जिन्दा कर दीजिए, मैं

छुड़ाने वाले मात्र आप ही हैं। यदि आप बहुत नहीं कर सकते, तो इसको जिन्दा कर दीजिए, मैं इसे इसके घर भेज देती हूँ, वहाँ जाकर मर जाय तो कलंक से बच जाऊँ। अतः हे भैया! आप ऐसी कृपा करो कि आपकी बहन का शरीर छूटने के बाद, लोग उसे कलंकीनी कहना न आरम्भ कर दें, मेरा आपको श्री चरणों में बार–बार प्रार्थना के साथ साष्टांग प्रणाम।

जिस समय रघुराज सवाई धाम पहुँचे उस समय गुरुभवन में गुरुदेव अकेले चारपाई पर विराजमान थे। श्री रघुराज जी ने जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम निवेदित किया और वह अपनी माता का प्रार्थना पत्र गुरुदेव के कर–कमलों में दिये। गुरुदेव ने पत्र को पढ़ा एवं उसे अपनी कुर्ते की जेब में रखकर श्रीमुख से बोले लल्ला! मुहल्ले के लोग बालक का मरना जान गये है क्या? रघुराज ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, नहीं प्रभो! अभी केवल हमारे परिवार के सदस्य ही जानते हैं, फिर गुरुदेव ने प्रश्न किया, लल्ला! बालक का प्राण कितने बजे के आस–पास छूटा है?

रघुराज ने प्रार्थना किया, 'उसका शरीर तीन–चार बजे के आस–पास छूटा हुआ है। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, लल्ला! तुम अभी घर चले जाओ और अपनी बहन को कहना कि मृत्यु बालक का शरीर खूब अच्छी प्रकार से कम्बल में लपेट ले, जिससे उसके शरीर का कोई भी अंग दिखलाई न दे, और वह तुम्हारी माँ के साथ आ करके दोनों गुफा के सामने कमरा नम्बर–एक के पास जो दो नीम के पेड़ हैं, उनके बीच में बैठ जाय। तुम भी उन सबों के साथ आ जाना, तब मैं बतलाऊंगा की क्या करना है? रघुराज श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में प्रणाम करके अपने घर पहुँच गये एवं करीब पैंतालिस मिनट बाद सवाई धाम आ गये।

उनकी बहन मृत्यु बालक जिसके ऊपर कम्बल लपेटा हुआ था तथा रघुराज की माँ नीम के पेड़ के पास बैठ गयीं और श्री रघुराज गुरुभवन में विराजमान श्री गुरुदेव भगवान को प्रणाम कर प्रार्थना किये एवं कहे कि वे सब आ गयी हैं। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा कि लल्ला! तुम तो इस कमरे के गेट पर रहकर खूब मुस्तैदी से ड्यूटी करो और किसी को भी कमरे के अन्दर मत आने देना। ब्रह्मचारी रामाश्रय से कह दो कि वह श्री प्रभुजी का पूजन कर आरती की तैयारी कर दे, अब तुम कमरे से बाहर निकल जाओ और कमरे के पास ही रहकर तुम ड्यूटी करो। किसी को किसी भी परिस्थिति में कमरे के अन्दर मत आने देना। उस दिन पता नहीं कैसा संयोग था कि श्री गुरुदेव भगवान के पास आने वाले श्रद्धालु दर्शनार्थियों की संख्या दो गुनी थी। जो भी आता है श्री गुरुदेव के दर्शनार्थ गुरुभवन में प्रवेश करना चाहता था। श्री रघुराज जी कमरे में किसी को नहीं जाने देते। अधिकांश: लोग तो मान गये, परन्तु कुछ लोग लड़ाई–झगड़े पर उतारू हो जाते थे। परन्तु रघुराज ने सबको बल पूर्वक रोक दिया एवं सब लोग गुफा के और कुँआ के बीच में थे। श्री गुरुदेव जी अपने कमरे से करीब तीन घण्टे बाद निकले। उन्होंने एक ही धोती आधी पहन रखी थी तथा आधे ओढ़े हुए थे। अपने गुरुभवन से निकलकर वे सीधे गुफा में गये, अनादि योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की आरती किये एवं आरती का जल लेकर सीधे नीम के पेड़ के पास पहुँच गये। जहाँ श्रीमती शारदा देवी अपने बच्चे का शव

जल लेकर सीधे नीम के पेड़ के पास पहुँच गये। जहाँ श्रीमती शारदा देवी अपने बच्चे का शव लेकर बैठी थी। उनके साथ उनकी माता जी भी थीं। वहाँ पहुँचते ही श्रीमुख ने आदेश किया कि लल्ली! अब इसके शरीर से कम्बल हटा दो। ... कम्बल हटाने के बाद आरती का अभिमंत्रित जल उसके मुख पर डाले। करीब दो मिनट बाद फिर आरती का अभिमंत्रित जल उसके मुख और शरीर पर डाले, तदन्तर एक मिनट तक लगभग दो फीट की दूरी से अपनी अमृत बरसाइनी आँखों से अपलक देखे एवं आरती का अभिमंत्रित जल उसके मुखारबिन्दु पर अपने कर-कमलों से तीव्रगति से डाले। बालक को जोर की हिचकी आयी एवं उसके प्राण वापस आ गये। श्रीमती शारदा देवी एवं उसकी माँ ने वही जमीन पर लेट कर श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। श्रीमुख ने कहा कि अब इसे लेकर तत्काल अपने घर चले जाओ। उसके बाद श्री गुरुदेव श्री सिद्धगुफा पर आ गये। उपस्थित सभी लोगों पर जल के छींटे डाले एवं पूरी आरती किये। आरती करने के बाद श्री गुरुदेव भगवान अपने गुरुभवन में चले गये एवं दस मिनट बाद ही कुर्ता धोती पहने बाँये कन्धे पर साल लटकाये छड़ी लेकर, हमारे सभी भाई-बहनों के बीच आ गये एवं गुरुभवन के सामने रखी आरामकुर्सी पर प्रसन्न मुद्रा में विराजमान हो गये। हमारे सभी उपस्थित गुरुभाई-बहनों तथा आश्रमवासी साधकों ने श्री चरणों में बारी-बारी से साष्टांग प्रणाम किया। यह कृपा प्रसंग यहीं समाप्त होता है, हम भी योगेश्वर द्वय के चरण कमल में साष्टांग प्रणाम के साथ यह गुणगान करते हैं कि .....

प्रभुजी तुम्हारी महिमा, संसार गा रहा है।
शिवजी का धाम पावन, कैलाश गा रहा है।।
बैकुण्ठ गा रहा है, ब्रह्मलोक गा रहा है।
प्रकृति का जर्रा-जर्रा, चर-अचर गा रहा है।।

योग वासिष्ठ से साभार

दृश्य की असत्ता और सबकी ब्रह्मरूपता का प्रतिपादन, माया के दोष तथा आत्मज्ञान से ही उसका निवारण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं— रघुनन्दन ! परब्रह्म परमात्मा की जो निर्मल चैतन्य–शक्ति है, वह सर्वशक्तिमती है। वह परमात्मा के सकाश से स्वाभाविक ही विभिन्न रूपों की कल्पना करती हुई भावी देह आदि आकृतियों की किञ्चित् स्फुरणा के रूप में स्वयं ही दृश्य जगत् बन जाती है। उस चेतन शक्ति का संकल्परूप मन ही अपने संकल्पमात्र से क्षणभर में गन्धर्वनगर के समान इस असत् (मिथ्या) दृश्यप्रपञ्च का विस्तार कर देता है। सब ओर प्रकाशित होता हुआ वह स्वयम्प्रकाश सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही जब बाह्यदृष्टि से दृश्यमान आकाशरूप होकर स्थित होता है, वही यह सबकी दृष्टि (अनुभव) में आनेवाला प्रसिद्ध आकाश है। वही परमात्मा कमलजन्मा ब्रह्मा का संकल्प करके उनके उस स्वरूप को देखता है। तदनन्तर दक्ष आदि प्रजापतियों की कल्पना करके जगत् की कल्पना करता है। श्रीराम ! इस प्रकार चौदह भुवनों में रहने के कारण चौदह प्रकार के अनन्त प्राणिसमुदाय के कोलाहल से युक्त यह सृष्टि परमात्मा के चित्त से ही निर्मित हुई है। भूतल से सम्बन्ध रखने वाले सभी प्राणियों में जो ये मनुष्य जाति के प्राणी हैं, ये ही आत्म ज्ञान के उपदेश के पात्र हैं।

श्रीराम ! यह जगत् अमुक निमित्त से और अमुक उपादान से उत्पन्न हुआ है, यह जो वाणी की रचना या कल्पना है, वह शास्त्रोक्त मर्यादा के निर्वाह के लिये है, वास्तव में कुछ नहीं है, क्योंकि परमात्मा में विकार, अवयव, विभिन्न दिशाओं की सत्ता तथा देश–काल आदि के क्रम सम्भव नहीं हैं। यद्यपि इनका आविर्भाव प्रत्यक्ष देखा जाता है, तथापि निराकार, निर्विकार और सर्वगत परमात्मा में इन सबका होना कदापि सम्भव नहीं। उस चिन्मय परमात्मा के बिना जगत् के किसी दूसरे मूलकारण की कल्पना हो ही नहीं सकती। दूसरी कोई कल्पना न है, न होगी। क्रम, शब्द और अर्थ अन्यत्र कहाँ से आ सकते हैं तथा व्यवहारजनित उक्तियाँ भी उस परमात्मा के सिवा और कहाँ से सम्भव हो सकती हैं। यहाँ जो–जो कल्पनाएँ हैं, जो–जो पदार्थ हैं, उनके वाचक जो–जो शब्द हैं और जो–जो वाक्य हैं, वे सब उस सत्–स्वरूप परमात्मासे उत्पन्न तथा सद्रूप होने के कारण 'सत्' ही समझे जाते हैं। 'यह जगत् भिन्न है और यह ब्रह्म भिन्न है ' – इस तरह के शब्दों और अर्थों का व्यवहार– भ्रम केवल वाणी में है, परमात्मा में नहीं; क्योंकि परिच्छेद होने पर ही भिन्नता होती है। (ब्रह्म अपरिच्छिन्न है, इसलिये उसका किसी से भेद होना सम्भव नहीं।) अग्निकी एक शिखा की दूसरी शिखा जननी है, यह कथन उक्ति – वैचित्र्यमात्र है। इस वाक्य के अर्थ में वास्तविकता नहीं है। इसी प्रकार परमात्मा के विषय में जन्य–जनक आदि शब्दों का व्यवहार वास्तव में सम्भव नहीं है; क्योंकि अनन्त होने के कारण जब ब्रह्म एक ही है, तब वह किसको किस तरह उत्पन्न करेगा ? जैसे समुद्र में जो तरङ्गों का

समूह दिखायी देता है, वह उससे भिन्न नहीं है, उसी प्रकार परब्रह्म में जो अर्थबोधक शब्द दृष्टि गोचर होता है, उसे विद्वान् पुरुष ब्रह्म ही मानते हैं। ब्रह्म ही चेतन जीवात्मा है, ब्रह्म ही मन है, ब्रह्म ही बुद्धि है, ब्रह्म ही अर्थ है, ब्रह्म ही शब्द है और ब्रह्म ही धातु है। यह सारा विश्व ब्रह्म ही है। इस विश्व से परे भी ब्रह्म पद ही है। वास्तव में तो जगत् है ही नहीं। सब कुछ केवल ब्रह्म ही है। सर्वस्वरूप एवं सर्वव्यापी उस अनन्त ब्रह्मपद से दूसरी कोई वस्तु उत्पन्न हो, यह सम्भव नहीं। जो कुछ ब्रह्म से प्रकट हुआ है, वह ब्रह्मरूप ही है। इस जगत् में ब्रह्मतत्त्व के बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं। निश्चय ही यह सब कुछ ब्रह्म ही है। यही परमार्थता – यथार्थ कथन है।

रघुनन्दन ! यह माया ऐसी है, जो अपने विनाश से ही हर्ष देने वाली होती है। इसके स्वभाव का पता नहीं लगता। ज्ञान की दृष्टि से जब इसको देखने का प्रयत्न किया जाता है, तब यह तत्काल नष्ट हो जाती है। अहो ! संसार को बांधने वाली यह माया बड़ी ही विचित्र है। यद्यपि यह असत्य ही है, तथापि इसने अत्यन्त सत्य की भाँति अपना ज्ञान कराया है। जो पुरुष ' यह जगत् ब्रह्मरूप से सत्य ही है ' अथवा ' मिथ्या होने के कारण असत्य ही है ' – इन दो बातों में से किसी एक को दृढ़ निश्चय के साथ अपना लेता है और मन में आसक्ति न रखकर जगत को स्वप्नभूमि की भाँति भ्रान्ति मात्र ही देखता है, वह कभी दुःख में नहीं डूबता। जिसकी इन मिथ्या भूत देह–इन्द्रिय आदि रूप द्वैतभावनाओं में अहंबुद्धि है, वही दुःख के सागर में डूबता है। स्वरूप ज्ञान से शून्य उस मिथ्यादर्शी पुरुष के लिये सब ओर केवल अविद्या ही विद्यमान है। जैसे जल में सूखी धूल नहीं होती, उसी प्रकार महान् पुरुष परमात्मा में विकार आदि कोई दोष नहीं होते। अविद्यारूपी नदी में बहता हुआ आत्मा इस संसार में आत्मा के यथार्थ ज्ञान के बिना अनुभव में नहीं आता और वह आत्म ज्ञान शास्त्र के तात्पर्यका यथार्थ बोध होने से ही प्राप्त होता है। श्रीराम! परमात्मा की प्राप्ति के बिना अविद्या रूपी नदी का पार नहीं मिलता। वह परमात्मा की प्राप्ति ही अक्षयपद कहलाती है।

सिद्धयोग के ग्राहकों से निवेदन

सिद्धयोग के ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपना वार्षिक शुल्क 170 रु. या आजीवन शुल्क 1000 रु. 10 वर्ष के लिये भेजना हो तो वे ऑन लाईन बैंक खाते में जमा कर सकते है। बैंक का कोड नं. तथा अकाउन्ट नं. निम्न है जो कैनरा बैंक एत्मादपुर का है।

खाता धारक – दासलाल शर्मा व विनोद शर्मा

I.F.S.C. - CNRB 0000371

A/C No. - 0371101018253

नोट – ग्राहकों को अपना पूरा पता सिद्धयोग कार्यालय में भेजना होगा ताकि पत्रिका ठीक प्रकार से डाक द्वारा भेजी जा सके।

व्यवस्थापक
सिद्धयोग कार्यालय
श्री सिद्धगुफा, संवाई
एत्मादपुर – आगरा (उ.प्र.)

लिपट जाऊँ रज बन के

– श्री जगदीश राए बंसल अधम

तेरे चरणों में गुरु देव , लिपट जाऊँ रज बनके
लिपट जाऊँ रज बन के...........................

भोर ऊंठ कर जाप करूँ मैं , गुरु चरणों में लीन रहूँ मैं
बन्धन मुक्ति का लक्ष्य धरूँ मैं , गुरु वर से ये आश करूँ मैं
मेरी नस नस करे पुकार , लिपट जाऊँ....................(1)

मेरे हृदय में जोत जलाओ , अन्तर तिमिर प्रभू जी मिटाओ
मेरी बीत रही उम्र बढ़ाओ , सोई शक्ति प्रभू जी जगाओ
यों बरसे योग फुहार , लिपट जाऊँ....................(2)

ज्योति से ज्योति जलाओ प्रभू जी , चरण शरण लगाओ प्रभू जी
सुन्दर दर्श दिखाओ प्रभू जी , लल्ला कह उर लाओ प्रभू जी
करता हूँ जय जय कार , लिपट जाऊँ......................(3)

मोह माया का फन्दा हूँ मैं , ध्यान धारण का अन्धा हूँ मैं
मन में मैं मैं करता हूँ मैं, पाँच तत्व का पुतला हूँ मैं
अधम की सरकार , लिपट जाऊँ.................(4)

योग-आसन

पादहस्तासन

विधि – समभाव से सीधे खड़े हो जायें व अपने दोनों हाथों को पीठ की ओर से घुमाकर आगे की ओर नीचे को झुकाते लायें व धीरे-धीरे अपने दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ लीजिये, किन्तु पैर यत्किंचित भी झुकने न पायें। पीठ झुककर गोलाकार बन गई हो व शिर दोनों हाथों के बीच आ गया हो । इसी को पादहस्तासन कहते हैं। निरन्तर के अभ्यासी लोग इसे खड़े होकर करते हैं।

कर रहे शक्ति का संचार

– 'चन्द छवि चातक' विजय कुमार शर्मा, सहारनपुर (उ.प्र.)

कर रहे शक्ति का संचार,
योगी श्री चन्द्रमोहन सरकार
विजयादशमी को जग में आये
अलूपुर धरा के भाग्य जगाये
इनके चरणों में कोटि प्रणाम
योगी श्री चन्द्रमोहन .....

देवीराम गृह चन्दवत आये
माँ धरती भी लाड़ लड़ाये
इनकी लीला अपरम्पार
योगी श्री चन्द्रमोहन .....

स्वप्न में चन्द को दृश्य दिखाया
जल प्रभुजी ने उन्हें पिलाया
फिर पात्र दिया उनके हाथ
योगी श्री चन्द्रमोहन .....

ऋषिकेश में चन्द्रमोहन जी आये
दीक्षा प्रभु रामलाल जी से पाये
स्वयं को गुरुचरण दिया दान
योगी श्री चन्द्रमोहन .....

योग विद्या प्रभु जी से पाई
योग ध्वजा जग में फहराई
प्रभुजी ने सौंपा सवाई धाम
योगी श्री चन्द्रमोहन .....

सबके अन्तर्मन की जाने
योग शक्ति जग उनकी माने
शरण में लेकर करें निहाल
योगी श्री चन्द्रमोहन .....

सूचना

सिद्धयोग के निम्नलिखित ग्राहक बन्धुओं से निवेदन है कि वे शीघ्र ही अपना आजीवन शुल्क 1000 रु. दस वर्ष का कार्यालय में जमा करा दें अन्यथा उनकी पत्रिका रोक दी जायेगी। यदि आगे ग्राहक नहीं बनना है तो इस बात की सूचना सिद्धयोग कार्यालय में भिजवा दें।

सन्तोष कुमार वत्सी	गुड़गाँव	एम. डी. खात्रे	झाँसी
केशव देव उपाध्याय	वाराणसी	भामचन्द	कुरुक्षेत्र
दामोदर ओटवाणी	झाँसी	साधूराम	रोहतक
बलदेव कुकरेजा	झाँसी	हर्षवर्धन	दिल्ली
श्री सुदर्शन कुमारी	फरीदाबाद	खगेश	गोहाना
आर.पी. दुबे	गोरखपुर	नरेश	उड़ीसा
डॉ. कैलाश शर्मा	वाराणसी	प्रदीप	अलीगढ़
आपरेटर रोहतास	रोहतक	कैलाश	कलकत्ता
शान्ति हैन्डलूम	पानीपत	रमेशचन्द	हिसार
खुदबुद ठेकेदार	वाराणसी	उपेन्द	लखनऊ
दयालु मुनि	भिवानी	हरेकृष्ण	दिल्ली
जयप्रकाश कंसल	पानीपत	गुलशन	दिल्ली
सत्यप्रकाश	भोपाल	अंजू अरोड़ा	दिल्ली
के.के.शर्मा	दिल्ली	नरेन्द्र भारद्वाज	इन्दौर
गणेश कुमार	दिल्ली	विनय लता	कलकत्ता
विनय सिजरिया	झाँसी	जे.एस. गर्ग	जीन्द
अशोक वर्मा	दिल्ली	राजकुमार	कॉंगड़ा
राम अवतार सुगन्ध	दिल्ली	पिशान दास पाजलू	कॉंगड़ा
विनय कुमार	दिल्ली	राजदुलारी	दिल्ली
विद्यारत्न	दिल्ली	रमेश कुमार बन्धु	दिल्ली
सज्जन अग्रवाल	धनबाद	योगेश शर्मा	दिल्ली
अचल चावला	दिल्ली	डॉ. एस.के.शर्मा	भिवानी
प्रो. विष्णु शर्मा	मुम्बई	बैजनाथ प्रसाद	गोरखपुर
बी.के. सक्सेना	भिण्ड	सत्यनारायण	बिलासपुर
विवेक बंसल	गाजियाबाद	राकेश कथूरिया	कॉंगड़ा
पवन पुरी	कांगड़ा	हरीश कुमार	सहारनपुर
विजय पुरी	कांगड़ा	विष्णु	सहारनपुर
हरीश पठानिया	कांगड़ा	अनीता शर्मा	कॉंगड़ा
कुलदीप सचदेवा	कांगड़ा	वेदपाल वर्मा	रुड़की
आर.के.शर्मा	कांगड़ा	विश्राम प्रसाद	बिहार
		विजय कुमार सैनी	करनाल
		परवीण महाजन	दिल्ली
		सुरेश गुप्ता	लुधियाना

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवान्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है - सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; यह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है।

– महर्षि अरविन्द

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

''अमृतसागर के मध्य एक मणिमय द्वीप है, जो कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरा हुआ है। उस द्वीप के मध्य कदम्ब के उपवन से आवृत चिन्तामणि से निर्मित एक भव्य भवन है, जिसमें शिवाकार मंच के ऊपर स्थित परमशिवस्वरूप पर्यङ्क पर भगवती चिदानन्दलहरी विराजमान रहती हैं, ऐसी आप भगवती का जो कतिपय भावुक भक्त निरन्तर भजन करते रहते हैं, वे धन्य हैं।''

संस्थापक : योगयोगेश्वर जनार्दनी चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586 सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा